केसरिया कश्यपमर

प्रोफेसर भूषणलाल कौल

साहित्य-संस्कृति के विरले संगम प्रोफेसर भूषणलाल कौल

राष्ट्रीय और प्रादेशिक पुरस्कारों से अलंकृत जम्मू कश्मीर के लब्धप्रतिष्ठ समालोचक एवं शिक्षाविद् प्रोफेसर (डा.) भूषण लाल कौल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अनमोल ज्ञान के रत्नों (लालों)/आभूषणों से जड़ा हुआ है। वे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। मां सरस्वती की उन पर विशेष अनुकम्पा थी। वे एक सफल प्रोफेसर, समर्पित अनुसंधित्सु, कश्मीरी और हिन्दी भाषा साहित्य में समानांतर रूप से साधनारत तुलनात्मक अध्ययन के विशेषज्ञ, कुशल प्रशासक, सैनिक सी स्फूर्ति लिए उत्साही पर्वतारोही, परिश्रमी अनुवादक, स्वर लहरियों से सब को मंत्रमुग्ध करने वाले लोकप्रिय कथावाचक, ओजस्वी वक्ता, कुशल समालोचक, तथा आतिथ्य सत्कार के लिए सदैव तत्पर रहने वाले मृदुभाषी थे।

कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभागाध्यक्ष पद से सन् 2001 में सेवानिवृत्त होने के बाद प्रो० कौल ने अपने को साहित्य साधना और सामाजिक सेवा के प्रति पूर्णरूपेण से समर्पित कर दिया। वे साहित्य एवं संस्कृति के विरले संगम के रूप में जनमानस में उभरे। सामूहिक विस्थापन के दंश और पत्नी स्व. श्रीमती मोहनी कौल के देहावसान ने प्रो० कौल को भीतर तक झकझोर कर रख दिया पर लेखनी उनके लिए वेदना से उभरने का सशक्त माध्यम बनीं। तब उन्होंने किसी उपाधि को प्राप्त करने या फिर धनोपार्जन के लिए साहित्य साधना प्रारम्भ नहीं की वरन् समाज और साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करने के लिए लेखनी उठाई।

प्रो० कौल ने 37 वर्षों तक स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाने के उपरान्त जीवन के अंतिम आठ वर्ष समाज को दिए। जम्मू में अपने बच्चों से दूर अकेले रहकर उन्होंने समाज को एक पाठशाला के रूप में पढ़ाया। बीच में वे व्याख्यान देने के लिए दिल्ली तथा अन्य स्थानों पर भी जाते रहे। विभिन्न आश्रमों, संस्थानों के आग्रह पर समय–समय पर उन्होंने धार्मिक एवं

केसरिया कश्यपमर

भूषणलाल कौल

एम.ए, पीएच.डी, डी.लिट्

प्रकाशक

प्रोफेसर भूषणलाल, मोहनी कौल रिसर्च फांऊडेशन

'गोपीधाम' - बरनाई (लुहार मुहल्ला)

डाकख़ाना मुठ्ठी

जम्मू-तवी

पुस्तक का नाम	:	'केसरिया कश्यपमर'
लेखक	:	प्रोफ़ेसर (डॉ०) भूषणलाल कौल, डी०लिट्० सेवानिवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।
प्रकाशक	:	प्रोफेसर भूषणलाल, मोहनी कौल रिसर्च फाउंडेशन, गोपीधाम, बरनाई, जम्मू।
प्रकाशन वर्ष	:	2010 ई०
प्रथम संस्करण	:	500 प्रतियाँ
मूल्य	:	300/- रुपये
अक्षर संयोजन	:	आई आई एल एस, डी.टी.पी सेंटर, 471-A, Sec-2 मुठ्ठी, जम्मू। रिंकू कौल # 94191-36369
मुद्रक	:	ओम प्रिंटेक, जम्मू
मुख पृष्ठ	:	

पुस्तक प्राप्ति का पता–

1. 'गोपीधाम', बरनाई, लुहार मुहल्ला, डाकख़ाना मुठ्ठी, जम्मू, पिन–181205
2. 'किताब घर' – कनाल रोड़, जम्मू।
3. 'संजीवनी शारदा केंद्र'–आनन्दनगर, बोडी, जम्मू।



शुभम् विशिन

मैं इस पुस्तक को अत्यन्त हर्ष के साथ अपने नवासे (दौहित्र) चिरंजीवी शुभम् विशिन (कुश) (जन्म तिथि 6 नवम्बर 1992 ई.) को उन के उत्साहवर्द्धन के हेतु अनुपम भेंट के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है मेरी इस साहित्यिक साधना से उन्हें गहन अध्ययन एवं सृजन हेतु प्रेरणा मिलेगी।

इसी विश्वास के साथ आशीर्वाद सहित।

-भूषणलाल कौल

विषयसूची

प्रस्तावना

डॉ० भूषणलाल कौल की हिन्दी भाषा में आठवीं पुस्तक 'केसरिया कश्यपमर' पन्द्रह भिन्न विषयों पर लेखक के उद्‌गार, दृष्टिकोण और विचार से युक्त लेखों का संग्रह है। ये लेख कश्मीर के कुछ प्रतिष्ठित तथा उदीयमान् दोनों प्रकार के रचनाकारों से संबंधित हैं। इस संग्रह में प्राचीनतम निवासियों के विश्वासों और जीवन की विभिन्न धाराओं को रेखांकित कराने वाले शोधपूर्ण लेख भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। 'केसरिया कश्यपमर' पुस्तक का आरंभ आधुनिक कश्मीरी कविता के सर्वेक्षण/मूल्यांकन से होता है। बीसवीं शती के चौथे दशक में उपमहाद्वीप की अन्य मुख्य भाषाओं की भाँति कश्मीरी में भी नवचेतना के स्वर मुखर हुए, इनका रेखांकन करते हुए लेखक कश्मीरी के लब्ध प्रतिष्ठ कवियों का परिचय तथा उनकी कविताओं के विशेष बिंदुओं का उल्लेख करते हैं। 1989-90 ई० में उस विस्थापित जनसमुदाय के कवियों की रचनाओं के वर्ण्य पर गम्भीर ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विक्षोभ-दर्शन के साथ-साथ व्यष्टि-समष्टि की व्यथा और पीड़ा की संवेदनात्मक समीक्षा की गई है। घाटी में रह रहे बुद्धिजीवियों और कवियों की दुखभरी दास्तान की भी अनदेखी नहीं की गई है। घाटी के अतिरिक्त अन्य कश्मीरी भाषा में लिखने वाले कवियों के योगदान लेखक के आलोचना—वृत्त से बाहर नहीं हैं। इस प्रकार से आधुनिक कश्मीरी कविता का वृहद् परिदृश्य उपस्थित करके परिश्रमी लेखक-आलोचक ने समग्र रूप से इस कविता की उपलब्धियों का आकलन किया है, जो उपयोगी सिद्ध होगा।

उदीयमान लेखकों की कृतियों की परिचयात्मक-विश्लेषणात्मक प्रस्तुति जहाँ संबंधित लेखकों के लिए उत्साहवर्धक है वहीं उनकी लेखकीय संवेदनाओं के विस्तार का भी उल्लेख किया गया है। कश्मीरी भाषा में लिखित/अनूदित/लिप्यांतरित रचनाओं की समीक्षा लेखक ने विभिन्न दृष्टिकोणों और स्थापनाओं के आधार पर सरल पर सरस भाषा में करके आलोचना की स्वस्थ और गम्भीर शैली का अनुसरण किया है। प्रत्येक रचना के विषय के आधार पर लेखक समीक्षा का स्वर निर्धारित करके आगे बढ़ता है जिससे लेखक की हिन्दी गद्य पर असाधारण पकड़ लक्षित होती है और साथ ही गद्य की विविधता भी दृष्टिगोचर होती है। इस वर्ग की रचनाओं ('श्रीरामकृष्ण कथा अमर्यथ', 'शाप', 'पीड़ा अस्तित्व की') में लेखक अपने अनुभव के साक्ष्य से अनुवादक की कठिनाइयों, सीमाओं, सफलताओं, असफलताओं को रेखांकित करते हैं। अनुवादक को उपयोगी परामर्श भी देते हैं। मूल लेखक का परिचय भी सुलभ करते हैं और अनुवादक की अन्य उपलब्धियों का भी उल्लेख करते हैं। लिप्यांतरण की ('पीड़ा अस्तित्व की, के सन्दर्भ में) आवश्यकता/ अनिवार्यता की यथास्थान चर्चा की गई है। लेखक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू समुदाय को अपने संस्कारों, रीति-रिवाजों, उत्सव-पर्वों के बारे में शिक्षित-परिचित करने-कराने का भरसक प्रयत्न भी करते हैं और अनुरोध भी, साथ ही उन्हें भूलने के दुष्परिणामों से अवगत भी कराते हैं। कश्मीरी हिन्दू संस्कारों पर अंग्रेज़ी में लिखित पुस्तक की उपादेयता का उल्लेख करते हुए इससे पूर्व इसी विषय पर लिखित पुस्तिकाओं की न्यूनताओं का दिग्दर्शन भी कराया गया है। 'कश्मीर! सांस्कृतिक परिदृश्य' एक संक्षिप्त परन्तु ऐतिहासिक-पौराणिक सन्दर्भ से पूर्ण लेख है। पाठकों का ज्ञान-वर्द्धन होगा।

लेखक हिन्दी पाठक वर्ग को मीर गुलाम रसूल नाज़की की कश्मीरी रुबाइयों की विशेषताओं से परिचित कराते हैं; उनके कुटुंब के सदस्यों की भी साहित्यिक- सांसारिक-आध्यात्मिक

उपलब्धियों, प्रवृत्तियों का उल्लेख करना नहीं भूलते। लेखक इन रुबाइयों से द्रवित होकर उनका हिन्दी पद्यानुवाद भी करते चले जाते हैं। मेरी दृष्टि में ये पद्यानुवाद भाव में मूल कश्मीरी के बहुत समीप हैं; डॉ॰ कौल का यह प्रयत्न श्लाघ्य है। इसी तरंग में लेखक अब्दुल अहद 'आज़ाद' के प्रभा-मंडल में निहाल हुए हैं। अपने अप्रकाशित वृहद् शोधप्रबन्ध के एक बड़े अध्याय का संकेत देते हुए इस संक्षिप्त लेख में 'कुलयाते-आज़ाद' पढ़ने के लिए पाठक को लालायित करते हैं।

'जम्मू-कशमीर राज्य में राजभाषा हिन्दी...' विचार-प्रधान लेखक है। यह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। लेखक का इस दिशा में किया गया सर्वेक्षण तथ्यपरक् है और जो सुझाव लेखक ने प्रस्तुत किए हैं वे व्यावहारिक हैं। क्रियान्वित करने योग्य हैं, इन सुझावों को लम्बित रखने के परिणाम राष्ट्र-हित में नहीं होंगे। मांगलिक कार्यों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीतों के संग्रह 'ह्यंज़े-हिमाल...' पर लेखक की व्याख्यात्मक जानकारी शोधाधारित है, पठनीय और विचारणीय भी है।

'शैवमत : अन्तर्दर्शन एवं आत्मविश्लेषण' में लेखक 'स्पन्द' के महत्त्व पर बल देते हैं। इसी के आधार पर एक अनुभवी तार्किक शिक्षक की भाँति शैवमत के गूढ़ रहस्यों को, इस की व्यापकता-विस्तार को समझाते हैं; इस मत को जीवन-पद्धति के रूप में धारण करके आनन्दोल्लास प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। लेख बार-बार पढ़ कर हृदयंगम हो सकता है। लेखक ने इस सन्दर्भ में प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक सरोकार पहचानने की ओर ध्यान आकर्षित किया है। मातृ-शक्ति की युगों से अनदेखी किए जाने से संवेदनशील लेखक व्यह्वल है, आहत है और आक्रोश से निहित स्वार्थ जन को ललकारता है। वह एक 'विमुक्त' हुए साधक के रूप में पाठक के सामने शब्दों के द्वारा सांगोपांग उपस्थित हो जाता है, निराकार साकार हो उठता है, संकुचित व्यापक बन जाता है। द्वैत भाव अद्वैत रूप में उपस्थित हो जाता

है। नृत्यमान लास्य और तांडव एकमेक हो जाते हैं। 'विसर्ग: कर्म संज्ञित:।' वाह प्रिय भूषणलाल जी!

'ललद्यद : मेरी दृष्टि में' विद्वानों-कवियों को लल के 'वाखों' के मूल पाठ उपलब्ध कराने में एक मील-पत्थर का काम करती है ही साथ ही समय के गर्भ में खोयी हुई साधना-पद्धति को ईषद् उघारती भी है। इस साधन पद्धति से अपरिचित विद्वानों-कवियों को विद्वान् लेखक ने आड़े हाथों लेते हुए, सभी वर्गों के हित के लिए कतिपय रहस्यों का उद्घाटन किया है। लेखक यह आभास देने में तनिक भी संकोच नहीं करता है कि उसने स्वयं इन रहस्यों का अवगाहन 'अभिनव लल द्यद' (श्रीमती बिमला रैणा) के सान्निध्य में रहकर किया है। साधना के सोपानों का परिचय सरल एवं व्युत्पत्तिशास्त्रानुमोदित शब्दावली का प्रयोग करके दिया गया है। उसने 'लल-वाखों' के देशी-विदेशी संकलनकर्ताओं की पाठनिर्धारण-अर्हताओं पर प्रश्न-चिह्न लगाए हैं और उक्त पुस्तक में ग्रहण किए गए पाठ को पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुरूप माना है। इस मूल्यवान पुस्तक का गम्भीर अध्ययन करने की अनिवार्यता का आग्रह लेखक के इस कटु-मधुर आलेख से स्वयं उद्बुद्ध हो जाता है। कौन पाठक इस शब्दात्मक अभिव्यक्ति से 'क्रिया-शीलता' की ओर अग्रसर नहीं होगा? यदि पाठक पूर्वाग्रहग्रस्त न हो तो!

'कश्मीर में शक्ति-उपासना : श्री शारिका और श्रीयंत्र' इस गवेषणत्मक लेख में कश्मीर में दो दर्जन से अधिक शक्ति-स्थलों की विद्यमानता; कश्मीरी हिन्दुओं में अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा 'पंचस्तवी' का वर्चस्व, श्रीनगर के हिन्दुओं (आबाल—वृद्ध) के द्वारा हारी पर्वत की (1989-90 तक) नित्य परिक्रमा आदि का संकेत देते हैं कि कश्मीरी हिन्दुओं का प्रमुख कृत्य शक्ति—उपासना रही है। लेखक ने इस के न केवल साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं अपितु जीवंत प्रमाण जुटाए हैं; तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र की अवधारणाओं को शब्दायित किया है, और शाक्तोपासना की गूढ़ विधि-प्रक्रिया पर

प्रकाश डाला है। इस उपासना को दक्षिणाचार अथवा समयाचार भी कहते हैं। इस सत्त्व प्रधान उपासना के द्वारा बौद्धों की वामाचार वृत्ति पर प्रबल प्रहार हुआ था। इस उपासना पद्धति का देवता तुरीयपाद (बाल त्रिपुरसुन्दरी) अर्थात् स्वयं शक्ति (न शिवेन विनादेवी देव्याच्च न विना शिव:) है। श्रीचक्र/श्रीयंत्र के नव आवरणों का, उनमें निहित शक्तियों का, शिव-शक्ति के ऐक्य का सविस्तार वर्णन; इस प्रक्रिया में अष्टांग योग की पेचीदगियों का, योगिनियों का, वृत्तियों का, विकारों का यथासम्भव सरल भाषा में वर्णन पाठक एवं साधक के लिए गुरु-वाक्य का कार्य करने में समर्थ है। लोक में व्यवहृत विभिन्न संस्कारों में, अनुष्ठानों में शक्तोपासना के तन्तुओं का विद्यमान होना कश्मीरी हिन्दुओं में इस दक्षिणाचार की सार्वभौमिकता के ही संकेत/लक्षण हैं। इस पुस्तक के लेखों के आलोक में निस्संकोच कह सकते हैं कि डॉ॰ भूषणलाल कौल समदर्शी पंडित हैं।

(सोमवार 2 फरवरी 2009 ई॰)

प्राण नाथ तृछ़ल
(प्रोफ़ेसर (डॉ॰) प्राण नाथ तृछ़ल)
सेवानिवृत्त प्राचार्य,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

मेरा प्रयास

पन्द्रह गद्य रचनाओं का एक संग्रह **'केसरिया कश्यपमर'** शीर्षक से पुस्तकाकार में पाठक समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत करने का साहस जुटा रहा हूँ। हिन्दी भाषा में यह मेरी आठवीं गद्यरचना है, इससे पूर्व 'साहित्य और विस्थापन : सन्दर्भ कश्मीर', 'शारदा गाँव, तीर्थ और विद्यापीठ', 'पंखुरियाँ गुलाब की', 'परमानन्द (कश्मीरी भक्त कवि)', 'पण्डित कृष्ण जू राज़दान' (कश्मीरी कृष्ण भक्त कवि) आदि पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। मैं पुनः हिन्दी भाषा और साहित्य की जानकारी को कश्मीर की सांस्कृतिक सम्पदा पर विस्तार के साथ प्रकाश डालने हेतु तथा उसे सही परिप्रेक्ष्य में पाठकों के सम्मुख लाने के उद्देश्य से प्रयोग में ला रहा हूँ।

आधुनिक कश्मीरी कविता पर विचार व्यक्त करते समय मैंने अब्दुल अहद आज़ाद, मिर्ज़ा गुलाम हसन बेग 'आरिफ़', दीनानाथ नादिम, मोती लाल साक़ी के साथ- साथ रहमान राही, गुलाम नबी ख़्याल, डॉ॰ शफ़ी शौक़, रफ़ीक़ राज़ तथा प्रेमनाथ 'शाद' की सृजनात्मक प्रतिभा पर भी विचार किया है। साथ ही कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए युगसत्य के विषैले प्रभाव को भी दर्शाने की चेष्टा की है।

यद्यपि मीर गुलाम रसूल नाज़की के रचना संसार पर मैंने अपने डी.लिट् के शोध-प्रबन्ध में विस्तार से विचार किया है, यहाँ सीमित आकार में उनकी रुबाइयों के आधार पर एक रेखाचित्र खींचने का प्रयास किया है। प्रत्येक रुबाई का हिन्दी पद्यानुवाद भी

पाठक के हेतु साथ दिया है। यही इस निबन्ध का प्रमुखाकर्षण है।

अब्दुल अहद आज़ाद के चिन्तन ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया है। मैं आश्चर्य में पड़ जाता हूँ कि एक प्राइमरी स्कूल मास्टर कैसे अध्ययन एवं शोध के क्षेत्र में आगे निकल कर अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना के प्रणयन में जुट गया। उन का चिन्तन तर्काश्रित, ज्ञानगर्भित, परिपक्व एवं प्रेरणादायक रहा है। इस में सन्देह नहीं कि वे अपने समकालीन कश्मीरी कवियों से बहुत आगे निकल चुके थे।

कश्मीरी रामायण विशेष कर प्रकाशराम कुरगामी (19वीं शताब्दी) के 'रामावतार चरित' (लेखन वर्ष—1847 ई०) में सीता का रूप यथार्थवादी जीवन—दृष्टि पर आधारित एक क्रांतिकारी महिला का रूप है। यहाँ सीता के व्यक्तित्व में निहित विशेषताओं के आधार पर हम निस्संकोच उसे रामकथा काव्य में एक विद्रोहिन् (क्रान्तिकारी नारी पात्र) के रूप में पद—प्रतिष्ठा प्रदान कर सकते हैं। कश्मीर के सगुण भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि सीता ने काज़ीगुंड, कश्मीर के निकट शंकरपोरा गाँव में एक पूजास्थल के निकट भूमि-शरण ली है।

'वनवुन' हमारे लोक साहित्य का अनमोल अंग है। प्रत्येक वर्ग और समुदाय के 'वनवुन' विवाहगीत अपने वैशिष्ट्य के कारण अद्भुत वातावरण की सृष्टि करते हैं। हर्ष, उल्लास, गौरव गाथा गायन, शुभकामना, सुखद भविष्य, बधाई सन्देश जाने इन लोक गीतों के साथ कितने अर्थ जुड़े हैं। मैंने 'ह्यंज़े' शब्द पर विचार किया है और अपना अध्ययन कश्मीरी पण्डितों के 'वनवुन' गीतों तक ही सीमित रखा है।

कश्मीर की शक्ति उपासना में 'पंचस्तवी' और 'श्रीयंत्र' का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आदिशंकराचार्य कृत 'सौंदर्य लहरी' में शक्ति उपासना के विविध आयामों का उल्लेख करते हुए 'श्रीयंत्र' के रहस्यमय स्वरूप तथा इस विषय की सांस्कृतिक महत्ता सिद्ध करते हुए इस की पौराणिक या अर्द्ध ऐतिहासिक

पृष्ठभूमि पर भी विचार किया गया है।

श्रीनगर—कश्मीर स्थित हारी पर्वत शक्ति पीठ, जिसे प्रद्युम्न पीठ, सिद्ध पीठ, शारिका पीठ एवं चक्रेश्वरी पीठ भी कहते हैं, शक्ति साधकों के अनन्य विश्वास और आस्था का प्रधान केन्द्र रहा है। मेरा प्रयास यह रहा है कि इस सांस्कृतिक सम्पदा को हिन्दी भाषा में भावी पीढ़ी तक पहुँचाने हेतु सरल, सशक्त एवं सचित्र अभिव्यक्ति प्रदान की जाये।

'जम्मू कश्मीर राज्य में राजभाषा के रूप में हिन्दी' विषय पर अहिन्दी प्रान्त के हिन्दी पाठक और अध्यापक के रूप में संतुलित दृष्टि से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। मैं इस बात से पूर्ण परिचित हूँ कि बहुधा यथार्थ बड़ा कड़ुआ होता है, लोग इसे सहन नहीं कर पाते, तुरन्त प्रतिक्रिया स्वरूप उबल पड़ते हैं। लेकिन बुद्धिमानी इसी में है कि हम यथार्थ से अवगत होकर सुधार और परिवर्तन की दिशा में प्रयास करें।

आजकल लल्लेश्वरी के वाखों की पुनर्व्याख्या हो रही है। यह कोई ग़लत बात नहीं है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि ग्रियर्सन महोदय ने भी अपने एक साथी के सहयोग से किसी ब्राह्मण परिवार से लल्लेश्वरी के वाख एकत्र करवाये। जो कुछ उन्होंने अथवा परवर्ती लेखकों ने कहा है या लिखा है वही सही है—ऐसा मानना भ्रामक होगा। सर्जनात्मक साहित्य में शोध की सम्भावना हर समय बनी रहती है। 21वीं शताब्दी में इस विषय को लेकर पाठालोचन (Textual Criticism) की दृष्टि से पुनर्विचार हो रहा है। सम्भव है कि कुछ नये तथ्य या भाषा से सम्बन्धित कुछ नये प्रयोग प्रकाश में आ जायें।

दूसरी बात नितान्तावश्यक है। लल्लेश्वरी एक योगिन, साधनारत शिव उपासिका एवं कवयित्री थी। आज तक जितने भी महापुरुषों ने लल्लेश्वरी पर लिखा है वे विद्वान् एवं महापण्डित हैं लेकिन एक भी उन में न योगसाधक है और न अभ्यासी शैवपण्डित।

'कश्मीर हिन्दू संस्कार', 'नींव! तुझे नमन', एवं 'पीड़ा

अस्तित्व की' मेरे तीन पुस्तक–परिचय पत्र हैं जो मैंने तीन लेखकों की रचनाओं पर लिखे हैं।

'नींव! तुझे नमन' मेरे एक शिष्य का विस्थापन से जुड़ा काव्य रचनाओं का संग्रह है। इस काव्य संग्रह का ऐतिहासिक महत्त्व है। मुझे विश्वास है कि जब कोई विवेकशील इतिहासज्ञ कश्मीर के एक समुदाय विशेष के विस्थापन के यथार्थ कारणों पर विचार करते हुए तथा इतिहास के झूठ को नकारते हुए सच को शब्दबद्ध करेगा तो ऐतिहासिक स्रोत के रूप में 'नींव! तुझे नमन' का अध्ययन उस के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

मैं संक्षेप में यह बताना चाहता हूँ कि मेरे लिये मेरा सांस्कृतिक विरसा कितना महत्त्वपूर्ण है, जिसकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने अपनी टूटीफूटी भाषा में, अपनी समझ के अनुसार प्रत्येक विषय पर निष्पक्ष रूप से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का प्रयास किया है। मैं अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल रहा हूँ यह निर्णय मैं विज्ञ पाठकों और अनुभवी आलोचकों पर छोड़ देता हूँ।

मैं अपने गुरुदेव प्रोफ़ेसर (डॉ॰) प्राण नाथ तृछ़ल साहब का आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को ध्यानपूर्वक पढ़ने का कष्ट किया और अपने निष्कर्षों के आधार पर इस की भूमिका लिखी है। यह डॉक्टर साहब का बड़प्पन है। आप सदा मुझे उत्साहित करते रहे हैं। इतना ही नहीं, सांस्कृतिक विषयों को लेकर जब मैं विभिन्न संस्थाओं द्वारा जन सभाओं में व्याख्यान देता हूँ तो डॉ॰ साहब अपनी उपस्थिति से न केवल मेरा मान बढ़ाते हैं अपितु महत्त्वपूर्ण सुझाव देकर मेरा मार्गदर्शन भी करते हैं।

दो वर्ष पूर्व मैं अपनी बड़ी बेटी से मिलने भरतपुर (राजस्थान) गया था। दो दिन रहा, तीसरे दिन प्रस्थान के समय अलग कमरे में मेरे नवासे (दौहित्र) ने अपना छायां चित्र मेरे हाथ में थमाकर कहा – 'नाना! अपनी आने वाली किताब में मेरा यह चित्र छपवाना। आपकी पुस्तक में फोटो देखकर मुझे भी लिखने की प्रेरणा मिलेगी। वैसे आज भी स्कूल मे मैं कविताएँ लिख कर

पढ़ता हूँ पर कोई मेरी ओर ध्यान ही नहीं देता। नाना! आप ही मेरा उत्साहवर्द्धन कर सकते हैं।' पुस्तक के आरम्भ में ही दौहित्र शुभम् विशिन (कुश) का फोटो मेरी दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करता है। कभी कभी हमें बच्चों से भी बहुत कुछ सीखने को मिलता है।

मैं उन समस्त बन्धुओं के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस पुस्तक के लेखन हेतु मेरी सहायता की। उन के सुझाव मेरे लिये उपयोगी सिद्ध हुए। श्री रिंकू कौल कुशल कम्प्यूटर यंत्रविद् ने रुचि के साथ डी.टी.पी का कार्य पूरा किया। वे साधुवाद के हक़दार हैं।

मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हुआ – आने वाला कल ही इस का निर्णय करेगा।

05 फरवरी 2009 ई॰ **भूषणलाल कौल**

Prof. Bhushan Lal Kaul
A brief introduction

There are people who change their direction with the changing winds and there are people who force the winds to change direction……Prof Bhushan Lal Kaul belonged to the second category.

Born on 5th of September 1941 and coming from a very humble background, he paid for his education through tuitions till he completed his masters in Hindi. This is important in view of the fact that he was married at an early age of seventeen. Marriage did not deter his quest for learning and both husband and wife continued to study after marriage.

He went on to complete his doctorate in Hindi and towards the later part of his life even did his D Litt. He was in fact the first Kashmiri Pandit to complete his D Litt and perhaps the first D Litt from the University of Kashmir. He went to become the Head of the same Hindi department where he had joined as a student.

In his early years in the Kashmir University he had a penchant for administration and worked as the Dean of Students Welfare, NSS coordinator and Additional Controller of Examinations and under normal circumstances would have been in line for the highest positions in the University administration, but that was not to be.

This is the point when fate intervened and the like every other Kashmiri Pandit he had to leave Kashmir and struggle ab initio in Jammu. This was the time when he refocused on writing and research —— the difference being a multi lingual approach —— bringing Kashmiri literature to Hindi audiences and vice versa. In the course of his studies for D. Litt, he had become very proficient in Kashmiri as well as Urdu and his writings bear testimony to this fact.

In 2001 he lost his wife to cancer. Any other person would have given up and retired to oblivion, but as I said, Prof Kaul was not

the one to give up. He decided to stay put in Jammu and devote all his energies and waking hours to literature and socio religious and cultural matters pertaining to Kashmiri Pandits.

This untiring zeal and energy resulted in more than a dozen of his books getting published, both in Hindi and Kashmiri, hundreds of papers on literary, social, religious and cultural topics published. Not only this he delivered hundreds of discourses on religious texts covering socio religious and cultural issues.

As a literary critic, he encouraged and promoted many unknown writers and poets from far flung migrant camps and brought them into limelight. We could say he helped break the monopoly of some writers and poets who had made it difficult for many others to come up. This made him very popular among many, and also antagonized a few.

He helped set up a vocational institute, the Sanjeevani Sharda Kendra, for poor migrants in Jammu and was its first chairman. This Institute is successfully running today.

In addition to the tons of love and respect and many awards he received from the Kashmiri community, he also got the Souhard Samman from the Utter Pradesh Govt. and the "Best Book Award" from the J&K Govt. The only time he went back to Kashmir after migration was to receive this award.

In all these years in Jammu, post migration, Prof Kaul became an ardent devotee of Bhagwan Gopinath ji and many of his discourses were on the teachings of Bhagwan ji. His eloquent style of delivery, combined with references to the Bhagwat Gita and contemporary devotional poetry always mesmerized the audiences. He constantly challenged many wrong social practices of Kashmiri Pandits and gave the religious background and justification to many of our age old customs, which sadly enough are getting lost in the din of our fast paced lives.

Befitting the person, even death could not pain him. He walked to the operation theatre in the hospital and passed into the waiting arms of Yamraj in a matter of three days. Before anyone realised what had happened, he was gone. Even then he ensured that all his near ones were present at the last moment. This was 16^{th} of Feb, 2009, Phagun Krishna Paksh Saptami.

As I said in the beginning, he lived on his own terms and

when he realised that the terms could change, he refused to accept and just left this world.

All we can say is that his untimely demise was a rude shock and one can only take consolation from the Bhagwat Gita and I quote:

"As a person puts on new garments, giving up old ones, the soul similarly accepts new material bodies, giving up the old ones."

"One who has taken his birth is sure to die, and after death one is sure to take birth again. Therefore, in the unavoidable discharge of your duty, you should not lament."

And the world goes on.....

We pay our tributes.

We would like to continue some of the research work that he had started. To that effect we have decided to start a research foundation by the name "**Professor Bhushan Lal, Mohini Kaul Research Foundation**", which would endeavour to continue the research and literary activities started by Prof Kaul. The release of the current book "**Kesaria Kashypmr**" is the first step in this direction and we hope to continue the unfinished tasks.

The research foundation is in line with the last wishes of Prof Kaul that the treasure of books, journals and papers which he had should not be put to any commercial use. The foundation operates out of our residence in "Gopi Dham" and any person who desires to use the books etc. for any research or literary activity is welcome to Gopi Dham to study and benefit from the material, without taking anything outside the premises.

All legal formalities to this effect will be completed in due course of time. All suggestion and ideas are welcome for the better functioning of the research foundation and we can be contacted at

1. **"Gopi Dham"**
Upper Barnai
P.O. Muthi, Barnai
Jammu – 181205
Mob. No.: 9469171266
Sh. R. L. Kaul

2. **Jyoti Bhushan Kaul**
Flat no 104 , 3rd Floor
Arunima Palace
Plot No. GH4, Sector 4
Vasundhara Ghaziabad
UP – 201012
Mob. No.: 09654996201

ICU BED No - 17

I have been struggling for the last one year with myself, whether I should or should not share this, but the thought that joy multiplies by sharing and grief gets divided won the day and I decided to make an attempt to share my feelings with all of you.

This is not a tribute by a son to his father as that is strictly a private matter nor is this an attempt to glorify his academic achievements. I am not qualified to do that and I leave that to you. What I am trying to do is to share my experience of what happened in the last 7 days of my father's life, something that a lot of people have asked me and something that I am still struggling to come to terms with.

The suddenness and the speed with which events moved in that period has without a doubt left an indelible mark on all of us, more so on the immediate family.

It was 16th of Feb. 2009, around 11 am or so, I was buying medicines in the market just outside the Ganga Ram Hospital in Delhi, where my father was admitted, and I was not able to get a couple of the prescribed medicines. I called my younger sister, who was by dad's bedside in the hospital and asked where else I could get these medicines from? Her reply was," Jolly forget about medicines, he's moved beyond them and you better be by his bedside now."

I rushed back to the hospital, took my elder sister along with me and went to the reception of the ICU to get a pass to go up to the ward where he was admitted to. The ICU pass mentioned "Bed No. 17". I have to mention here that among a lot of other things, that the ICU in any hospital does to you, is to take away your identity and give you a new one, for my father the new identity was "ICU Bed No. 17".

We were with him during those last moments. Understandably he was all wired up and just like we see in many

movies, the blip blip of a heart machine was indicating remnants of life which continued till about 12:45 , when the wave of the machine changed to a straight line, indicating that now medically he could be pronounced as dead. The transformation of the living person first to a bed no and now to just a body was complete.

As some one said" Time and place of death are fixed for all of us and God ensures that the events preceding the last moments lead us to this place" so very true in the case of my father. A person who steadfastly refused to leave Jammu and chose to live alone in Jammu for the last 8 years would breathe his last in the ICU of a hospital in Delhi, a city not of his choice, but would ensure that most of his near and dear ones are present at the fateful moment. How does one explain this? Under normal circumstances he would not have come to Delhi just a few days before the Shivratri, but a family function forced him to come to Delhi and as was the case every time, he had carried his return ticket with him, only this time he didn't need it. It was almost a routine check up at the hospital that necessitated an emergency surgery and the rest is history.

He had just arrived in Delhi on 7th Feb. and for the first time looked visibly tired after the journey. Same day we had consultations with the doctor which continued on Monday 9th of Feb., some further tests followed on 10th and the surgery was scheduled on 13th Feb. early morning and we had to reach the operation theatre straight on 13th morning. In between he did make a feeble attempt to postpone the surgery, which for obvious reasons was not accepted on medical advice. I drove him to the hospital on morning of 13th Feb., we went straight to the surgery wing. We had to complete the paper work before the surgery, which ironically included the consent form. He signed it himself, little knowing that this would be the last time he held a pen in his hand and the last thing he would sign. In the hindsight it was like a death warrant he was signing for himself.

Post surgery, he was progressing very well and was shifted to his room by afternoon and till about 5:30 pm everything seemed normal, when suddenly the problems started and he was immediately rushed to the ICU where he stayed till end. The change was so sudden that it seemed that God Almighty just decided to pull the plug and start what I term as the "beginning of the end" or the beginning

of the very last act.

Thereafter the only progress he made was towards death, even though on the evening of 15th, there was a glimmer of hope and the doctors said that he was critical, though stable and was just showing some signs of a fight back.. Actually this was the effect of the platelets he was administered as a last ditch effort in addition to the life saving drugs that he was continuously on. This hope, as we found out on 16th, was just momentary, probably this was his way of preparing us for the final showdown and ensuring that all of us had some rest and sleep before the final end came.

It was a humbling experience even for the doctors at the hospital. They were equally clueless as to what happened. How a routine surgery, that they performed day after day and week after week, could result in a death. There were absolutely no signs of anything amiss before, during or even after the surgery. He was absolutely fine in the recovery and was even shifted to a room as well so what happened? There are no answers to this except that it was a one in a million case. Just that this one in a million case had to be our father. Actually for those of you who understand statistics, this is a real life example of use or misuse of statistics. One in a million is actually better than Six Sigma level performance, which is something every one in the corporate world aspires for and ironically I teach and coach people on the use of Six Sigma techniques.

As I said before this was just the medical death, I think he had a premonition long back and he was preparing for the inevitable. Just that all of this happened a little too quickly.

Some of the facts that came out in the days that followed actually confirm this belief. He had revised his will just 2 months back. He told his nephew Sunny at the Jammu railway station, on the day of his departure for Delhi, "Lets us have tea and biscuits together for perhaps the last time, I may not come back to Jammu". He left the cupboards of his room open in Delhi, before leaving for the hospital, something which he never used to do before. Interestingly he also signed 2 blank cheques and gave them to me to cover for his hospital expenses!!

The last thing he said to me was to call up Sh. Pran Nath Gharib Bhai Ji, who was his dear friend, and ask him to pray for him,

once he was moved to the operation theatre.

So what happened? I think a medical problem just diagnosed challenged his notion of living on his own terms. Post operation it would not be possible for him to live alone. His terms of living got challenged and he just gave up and refused to change. However this submission to God's will ensured that there was no suffering at the end and everyone has been asking "Why?" and not "Why Not?"

The last public function he attended was just after he came to Delhi. The lecture was dedicated to Bhagwan Gopi Nath ji at his ashram in Vaishali Ghaziabad. I was there with him and I see it now as a final tribute he gave to Bhagwan ji before becoming one with him. True to his nature he did not express his fears if any, in the last days to any of us and continued to write his daily diary right upto the end. He had more lectures lined up in Jammu and befitting an academician and a literary person, he remained with his books right upto the very end. I had walked my father in to the hospital operation theatre and now I was walking his body out all in a space of four days. I was too numb for anything.

It took another two hours for the nurses to un wire him and get him hospital ready for the last journey. I was handed over a hospital death certificate and ironically another piece of paper, which I could say was the road document to take my father home for the last time. This was to ensure as the nurse said, "Should the traffic police check on the way, you can prove that you are taking your father home and not stealing any dead body" This was an example of the stark realities of real life. As I was walking out I overhead the nurse callout to her colleague," Clean the bed and get it ready for the next patient" As I realised the ICU bed no 17 was in demand and was soon going to have a new occupant and would accept a new live body giving up the old dead one. The identity was being given to someone else in line with the words of Lord Krishna in the Bhagwat Gita.

> *"As a person puts on new garments, giving up old ones, the soul similarly accepts new material bodies, giving up the old ones."*

The identity remains unchanged, the occupants keep changing.

- Jyoti Bhushan Kaul

आधुनिक कश्मीरी कविता : नव्य प्रयोग एवं उपलब्धियाँ

भाग–अ

आधुनिक कश्मीरी काव्य में नवयुग की अनुगूँज बन्दगी के जीवन में ज़िन्दगी का हुस्न (सौन्दर्य, छटा) जी हाँ, मैं जानबूझकर ग़ुलाम अहमद 'महजूर' (1887–1952 ई॰) अब्दुल अहद 'आज़ाद' (1903–1948 ई॰), मिर्ज़ा गुलाम हसनबेग 'आरिफ़' (1910–2003 ई॰), मास्टर ज़िन्द कौल (1884–1966 ई॰), दीना नाथ 'नादिम' (1916–1988 ई॰), मीर ग़ुलाम रसूल 'नाज़की' (1912–1998 ई॰) अब्दुल रहमान 'राही' (सन 1925 ई॰), अमीन कामिल (सन 1924 ई॰), मोती लाल 'साकी' (1936–1999 ई॰), पण्डित लॅखमन जू राज़दान/लाल लॅखमन (1892–1962 ई॰) के नाम लेकर इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहता हूँ कि 20वीं शताब्दी के चौथे दशक से कश्मीरी काव्य में नवचेतना की अनुगूँज सुनाई देने लगी। बहुत समय तक हमारे प्रतिष्ठित कविजन अध्यात्म के आनन्दलोक में विचरते रहे लेकिन अपनी पथरीली धरती पर पाँव रखते ही उन्हें यथार्थ का एहसास सताने लगा और एक पीड़ित, शोषित, उपेक्षित, अपमानित, उत्पीड़ित एवं पराधीनता की ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ देशवासी सर्जनात्मक साहित्य का प्रमुख प्रतिपाद्य बन गया। यह बदलाव का युग था। अंग्रेज़ी भाषा–भक्त महापण्डित ज़रूर बौखला उठे लेकिन जनमानस का प्रतिनिधित्व करने वाला देशभक्त

कवि नये सन्देश को नई भाषा के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाने लगा। इन्होंने रससिक्त (शृंगारिक) रचनाएँ भी लिखीं लेकिन यह प्रेमाकर्षण लोकमानस से जुड़ा है। चाहे वह 'महजूर' की ग्रीसकूर (कृषक बाला) हो या आज़ाद की 'व्यथ' (वितस्ता)। अत्यंत सूक्ष्म, मधुर एवं विह्वल कर देने वाली भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति इन की शृंगारिक रचनाओं में देखने को मिलती है। इस युग में कवि देशप्रेम की भावना से तड़प उठा और जननी जन्मभूमि के प्रति समर्पित भाव से भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुओं को लेकर रचनाओं का प्रणयन होने लगा, चाहे वह कश्मीर के स्वर्णिम अतीत का गौरव गान हो अथवा दुर्दशाग्रस्त वर्तमान के युग–सत्य की मार्मिक अभिव्यक्ति, राष्ट्रीय काव्य में सांकेतिक वर्णन (गुल और बुलबुल की शाइरी) तथा राष्ट्रीय काव्य में क्रान्ति का आह्वान–विप्लव और विद्रोह का स्वागत एक साथ होने लगा। दूसरी बात जिस की ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ – वह है प्रगतिवादी चिन्तन के विस्फोटक अग्निकण। 'आज़ाद', 'नादिम', 'राही' तथा अन्य उभरते रचनाकार इस विचारधारा से प्रभावित हुए, फलतः आधुनिक कश्मीरी कविता वैचारिक धरातल पर भी सम्पन्न होने लगी।

एक स्कूलमास्टर **अब्दुल अहद 'आज़ाद'** ने निर्भीक रूप से समाजवादी चिन्तन को इस की वैचारिक गरिमा के साथ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। ज़मीदारी प्रथा लड़खड़ाने लगी और पूंजीपति व्यवस्था में शिगाफ़ (दरार) पड़ गये। इस प्रकार नाश और निर्माण का समान रूप से स्वागत होने लगा विचार प्रधान लम्बी कविताएँ लिखकर 'आज़ाद' ने नव प्रयोगों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की। इस दृष्टि से 'दॅरियाव' (नदी) एवं 'शिकव–ए–इबलीस' (शैतान की शिकायत) आज़ाद की उल्लेखनीय रचनाएँ है। यह मानना पड़ेगा कि 'आज़ाद' एक भावुक कवि की अपेक्षा एक जागरूक कवि थे जिसने बौद्धिक चिन्तन एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन का स्वागत करते हुए जीवन जीने की प्रेरणा दी।

प्रगतिवादी चिन्तन (तरक़्क़ीपसन्द तहरीक) से **मिर्ज़ा ग़ुलाम हसन बेग 'आरिफ़'** भी बेहद प्रभावित हुए और स्वातंत्र्योत्तर युग में

मोहभंग की भीषण स्थिति का सामना करते हुए आरिफ़ ने कला को जीवन के सांथ जोड़ दिया और युग की पहचान अथवा युग–सत्य को सर्जन की आधारभूमि के रूप में स्वीकृति प्रदान की। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'रामराज्य' की स्थापना होगी – आम आदमी का यह सपना टूट गया।

ग़ज़ल और गीत के साथ आरिफ़ ने कश्मीरी भाषा में रुबाई लेखन की विधा को अपनाया जो बाद में श्री ग़ुलाम रसूल नाज़की की असाधारण प्रतिभा से पर्याप्त समृद्ध हुई। तीक्ष्ण व्यंग्य के लिये आरिफ़ ने रुबाई को सशक्त साधन के रूप में स्वीकारा। संक्षिप्त आकार के इस प्रयोग को हम मुक्तक–काव्य के अंतर्गत ले सकते हैं। आरिफ़ ने इस विधा को अपनाकर तथा अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करके जीवन और काव्य के मध्य गहरा सम्बन्ध स्थापित किया।

आरिफ़ की रुबाइयों में व्यंग्य समकालीन यथार्थ से जुड़ा है। समकालीन नेताओं पर चोट क़रते हुए कवि लिखते हैं कि 'सियासी दोस्ती तो काग़ज़ी नाव' है। राजनीति में कोई किसी का मित्र नहीं और स्थायी रूप से कोई किसी का शत्रु नहीं है। कवि समकालीन सत्तालोलुप नेताओं की इस हक़ीक़त से परिचित हैं इसीलिये 'सियासी दोस्ती' को 'आयाराम गयाराम' का गठबन्धन समझते हैं। समकालीन सन्दर्भ में इस कथन की सार्थकता स्वयंसिद्ध है।

आज की स्थिति यह है कि मानव मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका है। विश्वास को फाँसी पर लटकाया गया है और धर्म तो मानो देश से निष्कासित हो चुका है फिर भी तुर्रा यह है कि जन–प्रतिनिधि होने के नाते जनसेवक के रूप में जनहित के लिए आज के नेता आवश्यकता से अधिक व्यस्त दिखाई देते हैं।

आरिफ़ साहब के शब्दों में :–

हिन्दी अनुवादः

'सियासी दोस्ती है कागज़ी नाव
अक्षर समान सुला न देना इस पर अपने आप को
आगे बढ़ना है तुझ को बचने का ढूँढ उपाय

स्वार्थ की आंधी से तरंगित है समय की लहरें।'

('एन एनथॉजी ऑफ माडर्न कश्मीरी वर्स

'टी. एन. रैणा, पृ॰ 112)

भौतिक जीवन की उत्तरोत्तर प्रगति के कारण आज हम कई परम्परागत मूल्यों से वंचित हो चुके हैं। प्रकृति के रहस्यमय शान्त वातावरण में भी मानव हस्तक्षेप की अनधिकार चेष्टा निरन्तर बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप व्यवस्था में बिखराव आ चुका है। ज़माने के बदलते रंग और इंसान के बदलते सोच ने जीवन के मापदण्ड ही बदल डाले हैं। समय की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह निरन्तर गतिशील हो कर आगे बढ़ता है और कभी भी पीछे मुड़ कर नहीं देखता। समकालीन कश्मीरी कविता में भावानुभूति से कहीं अधिक सुलझे–उलझे विचारकण सर्जन के प्रेरणास्रोत बनकर आकार के सांचे में ढल जाते हैं।

चिनार के समान विशाल एवं भव्य सर्जनात्मक कलाकर के रूप में **पण्डित दीनानाथ 'नादिम'** ने आधुनिक कश्मीरी कविता में प्रयोगों के स्तर पर एक नया अध्याय जोड़ दिया। कश्मीरी कविता में सॉन्यट (sonnet), गीतिकाव्य (opera), आज़ाद नज़्म (free verse) एवं मिनी कविता सर्वप्रथम लिखने का श्रेय नादिम को है। स्वातंत्र्योत्तर युग में स्वप्नभंग की स्थिति से विह्वल नये युग के नये कवि के रूप में वे कश्मीरी भाषा में नई कविता के मूल प्रेरणास्रोत माने जाते हैं। नादिम वस्तुतः अपने युग की उपज है और युगीन परिस्थितियों तथा विभिन्न आन्दोलनों ने उन की रचनात्मक साधना को नये आयाम प्रदान किये। परम्परा से अलग हटकर उन्होंने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के आधार पर आश्चर्यचकित कर देने वाली मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। आधुनिक कश्मीरी काव्य के अंतर्गत प्रगतिवादी काव्य के इतिहास में 'आज़ाद' के बाद 'नादिम' का योगदान अभूतपूर्व रहा है। कश्मीरी कविता को समकालीन चिन्तन पद्धतियों पर आधृत विचारबिन्दुओं से महिमामंडित करने में नादिम विशेष रुचि रखते थे। नई कविता के अग्रदूत होने के साथ–साथ नादिम कविता के कलेवर में नव–प्रयोगों के प्रति आस्थावान थे।

'म छम आश पगहच' (मुझे आशा है कल की) नादिम की एक उल्लेखनीय रचना है जिस में जीवन के प्रति एक स्वस्थ स्वीकारात्मक दृष्टिकोण को तीन काव्य बिम्बों के द्वारा वाणी प्रदान की गई है। एक गर्भवती महिला, एक प्रवासी विरहिणी तथा एक सधवा सुन्दरी, तीनों आने वाले कल की आशा पर जीवित हैं। तीनों काव्य बिम्बों में कल के सौन्दर्य को निरखने के हेतु वे आज आस लगाये बैठे हैं और यही आशावादी दृष्टि उसे जीने के लिये प्रेरित करती है–

हिन्दी अनुवादः

'मुझे आशा/आस है कल की
बच्चों के पिता आने वाले हैं।
ज्यों ही उनका नाद सुनूँगी
स्वागत हेतु निकल आऊँगी
बाहुपाश में कस लूँगी
बलाये लूँगी
सब्ज़ घास पर सजाऊंगी आसन
बच्चों के पिता आने वाले हैं।'

('शिहिल्य कुल–नादिम–पृ॰ 65, 66)

'नाबद त ट्यठव्यन' (नबात और तिक्त जड़ी) नादिम की एक प्रयोगात्मक रचना है। इस कविता में सामान्य अर्थ अपना महत्त्व खो देता है और सम्पूर्ण कविता को पढ़कर सामूहिक प्रभाव को तलाश कर अथवा महसूस कर ही तथ्य की गहराई तक पहुँचा जा सकता है। प्रयोगों की प्रचुरता के कारण पाठक कविता के इस अजायबघर में एक अजनबी के समान अकेला और उपेक्षित रह जाता है। अतिशय बौद्धिकता के कारण जनमानस और काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध टूट कर बिखर जाता है। इस सन्दर्भ में नादिम की अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'लखचि छु लखचुन' (लक्षणिन् का लक्षण), 'कॉठ्य दरवाज़ प्यठ घर ताम' (काठी दवरवाज़े से घर तक), 'वुनल' (धुन्ध), 'कॉफ़ त ज़ाल (कैफ़ और ऊँघ), 'शिहिल्य कुल' (छायादार वृक्ष), 'टावा टावा' (काँव काँव), आदि। नई कविता में नादिम प्रयोगों के शीशमहल से नीचे उतर कर

विशुद्ध अनुभूति के स्तर पर जीवन के कटु यथार्थ को भोगता–झेलता साधनारत दिखाई देता है।

दीनानाथ 'नादिम' के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, कला और चिन्तन के विकास में कश्मीर की सांस्कृतिक सम्पदा का विशेष योगदान रहा है। वे अपनी परम्परा से कट कर कभी अलग नहीं हुए। उन्होंने अपनी लोक संस्कृति के असीम भण्डार से ऐसे मौक्तिक कण ढूँढ निकाले कि जिन की आभा से उन की रचनाओं का सौन्दर्य निखर उठा। इस दृष्टि से उन का संगीत नाट्य 'व्यथ' उल्लेखनीय है।

नादिम भाषा के धनी हैं। आधुनिक युग में कश्मीरी भाषा को एक गौरव सम्पन्न साहित्यिक भाषा बनाने में नादिम का योगदान सर्वोपरि है। शुद्ध कश्मीरी तद्भव शब्द–प्रयोग से नादिम ने कश्मीरी भाषा को एक सशक्त, भावाभिव्यक्ति में समर्थ भाषा के रूप में महिमामंडित किया। वे शब्दों की अन्तरात्मा से परिचित थे। शब्दों के माध्यम से नाद–सौन्दर्य की सृष्टि करने में भी नादिम सिद्धहस्त थे।

नई कविता क़े काव्यान्दोलन से प्रेरित होकर नादिम ने कई रचनाएँ लिखी हैं जिन में उल्लेखनीय हैं–

'स्यन्द वानि ठहर' (सिन्धु जल ठहर), 'सुति ओस दाहा' (वह भी दिन था), 'समझौता', 'ऑन ज़िन्दगी हुंद' (आईना ज़िन्दगी का), 'ज़िन्दगी यीच़ वसी (ज़िन्दगी इतनी व्यापक), 'हंग मंग वुन्य वुन्य' (अचानक अभी–अभी), 'आवाज़न हुंद माने' (आवाज़ों के अर्थ) आदि।

'नादिम' ने ही कश्मीरी कविता को परम्परागत रूढ़ बन्धनों से मुक्ति दिलाई। छन्दोबद्धता का बन्धन तोड़ दिया और नित नये प्रयोगों के द्वारा कश्मीरी कविता के अन्तरबाह्य स्वरूप में परिवर्तन उपस्थित किये। उनकी काव्य प्रतिभा सदा विकासोन्मुख रही है यही उनके जीवित होने का प्रमाण है।

'नादिम' ने स्वयं कहा है–'मैं मरण में विश्वास नहीं करता। मेरी जीवन में आस्था है–शाश्वत जीवन में।'

('नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ'–सन् 1985 ई॰–पृ॰ 29)

पद्मश्री **प्रोफ़ेसर अब्दुल रहमान 'राही'** (ज्ञानपीठ पुरस्कार

विजेता 2007 ई॰, जन्म 1925 ई॰) निस्सन्देह एक अद्‌भुत कवि, अध्यापक, शोधकर्ता एवं सशक्त वक्ता हैं। फ़ारसी भाषा और साहित्य के अध्यापन से लेकर कश्मीरी भाषा और साहित्य के अध्यापन तक राही ने ज़िन्दगी के कई खूबसूरत पड़ाव तय किये हैं। तरक़्क़ीपसन्द शाइर रहमान राही अंगूठी में नगीने के समान आकर्षक, गज़लगो शाइर रहमान राही–मांसल स्वप्निल प्रेमानुभूति एवं परवश कर देने वाली काव्याभिव्यक्ति, राही की प्रयोगात्मक प्रवृत्ति एवं आत्मबोध की कविता, तलाश अस्तित्व की, राही नई कविता के शाइर और अब बौद्धिकता का घटाटोप–तपते रेत के ज़र्रों में रसकणों की तलाश – इस प्रकार पिछले पचास वर्षों से प्रयोगात्मक स्तर पर राही सर्जनात्मक प्रतिभा के जौहर दिखाता हुआ हमें जीने की प्रेरणा भी दे रहा है और जीवन को जानने–पहचानने की उत्कंठा भी जगा रहा है। राही की सांस्कृतिक चेतना अद्‌भुत है। वे अपनी परम्परा के साथ जुड़े हैं मातृभूमि के प्रति समर्पित और उसके सांस्कृतिक वैभव से परिचित।

सन् 1950 ई॰ के बाद 'नादिम' के साथ–साथ रहमान राही ने कश्मीरी कविता को नई दिशाओं की ओर प्रेरित करने में तथा नई सम्भावनाओं को तलाशने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है। सन् 1958 में राही का प्रथम काव्य संग्रह 'नवरोज़िसबा' प्रकाशित हुआ और सन् 1997 ई॰ में राही का बहुचर्चित काव्य संग्रह 'स्याह रूद जॅर्‌यन मंज़' प्रकाशित हुआ और 2007 ई॰ में इन्हें 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मैं ईमानदारी के साथ अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखना चाहता हूँ कि 'स्याह रूद जर्‌यन मंज़' पढ़कर मुझे लगा कि मैंने 'नवरोज़िसबा' के अपने आदर्श कवि को खो दिया। मैंने चाहा कि राही से पूछूँ कि राही साहब! आप ने मेरे उस रहमान राही को कहीं देखा तो नहीं जिन्होंने लिखा है–

1. *'सु गुलाब राय ड़्यूठुम बॅयि अज़ गुलाब छावान' (उस गुलाबमुखी को आज पुनः देखा गुलाबों का लुत्फ उठाते)*
2. *'खो मत देना असर इर्‌फ़ान (ब्रह्मज्ञान) का*
   दर्दे जिगर (मन की व्यथा) को ग़नीमत जान'

3. 'जब उसने घुँघरू बन्धे दामन को छनक दिया
फिर अपने आप पर नियंत्रण न कर सका'
4. 'जब से तेरे आने का सन्देश बसंत लाया,
दीप्त हो उठा मेरा संसार, मनमीत
तब से गुलज़ार पुष्पित हो उठे,
इच्छाएँ महकने लगीं भरपूर, मनमीत'
5. 'हे माँ कश्मीर! पूर्व काल से ही
तेरे अधीन हैं ज्ञान स्रोत सारे
हमारे वक्षस्थल से प्रवाहित हो
वितस्ता स्त्रोत्स्विनी अध्यात्म–ज्ञान की

'स्याह रूद जॅरय्न मंज़' काव्य संग्रह का प्रकाशन सन् 1997 ई॰ में हुआ। इसमें 110 नज़्में एवं 41 गज़लें (कुछ नयी–कुछ पुरानी) संगृहीत हैं।

स्वयं भूमिका में राही लिखते हैं–

–'मानि परवर आसि कथ मोलनावनस
टारि हरगाह नय खॅस्यक मंसावनस'।।

हिन्दी अर्थ :

'मूल्यांकन होगा, अर्थवान होगी यदि बात
छोड़ दी जायेगी नहीं बायगी यदि बात।।

लेकिन इस बात में कोई सन्देह नहीं कि 'स्याह रूद जॅरय्न मंज़' राही की सृजनात्मक प्रतिभा का एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। व्यक्तिगत रुचि–अरुचि को छोड़ कर जब आलोचक की दृष्टि से काव्य–संग्रह का मूल्यांकन करना हो तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राही एक मंझे हुए कलाकार, रचनाकार, चिन्तक और सर्जनहार (स्रष्टा) के रूप में पाठक के मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं। वे अपने युग में जी रहे हैं और समसामयिक घटना चक्र से खिन्न भी दिखाई दे.रहे हैं। लिखते हैं–

'हृदयाकांक्षा अभिव्यक्ति का पथ तलाश लेती है
वेगवाही कुल्या रॅम्बआर* के बहाव को सोख लेती है

*(रॅम्ब आर – दक्षिण कश्मीर में शोपयान के निकट प्रवाहित एक बरसाती नद।)

क़लम तोड़ कर यदि अंगुलियाँ भी तराश लेंगे
रक्त फुहारे (फुव्वारा) भीतर की व्यथा बता देंगे'

('स्याह रूद जॅरस्यन मंज़', राही, पृ॰ 24)

इस युग में तथा परवर्ती काल में सन् 1999 ई॰ तक पद्मश्री कवि **मोतीलाल साक़ी** ने अपनी प्रतिभा से जन मानस को मोह लिया। ग्रामसेवक से शोधसहायक तक संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए साक़ी ने कश्मीरी गद्य और पद्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। साक़ी एक किसान कवि थे, प्रकृति के निरीक्षक, अन्वेषक और प्रशंसक। मस्तमौला साक़ी, रूप और यौवन पर मुग्ध थे। उनके विरहगीतों में कराहती वेदना का अश्रुसिक्त शब्दबद्ध रूप देखने को मिलता है। उन की देशप्रेम की कविताओं में सांस्कृतिक चेतना अपनी चरमसीमा पर दिखाई देती है। साक़ी नई कविता के कवि भी हैं और युगबोध के साथ–साथ जीवन जीने की अत्याधिक इच्छा उन की रचनाओं में मुखर हो उठी है। परवर्ती युग में हमें उनकी रचनाओं में आध्यात्मिक चिन्तन के प्रति प्रबलाकर्षण देखने को मिला।

'मादर ख्वाब' (सन् 1968 ई॰) और 'मनसर' (सन् 1979 ई॰) साक़ी के बहुचर्चित प्रकाशित काव्य संग्रह है। 'मनसर' पर उन्हें जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी का पुरस्कार सन् 1980 में तथा साहित्य अकादमी (नई दिल्ली) का पुरस्कार सन् 1981 ई॰ में प्राप्त हुआ। आज भी 'साक़ी' की इस रचना के बोल घाटी में गूँज रहे हैं–

हिन्दी अनुवाद :

'उस के ज़ुल्फों (छल्लेदारकेश) में यह ख़म
(टेढ़ापन झुकाव) रहे न रहे
ग़नीमत है ग़म की शाम, रहे न रहे।

('जदीद कॉशिर शॉयिरी' डॉ॰ हामिदी कश्मीरी–पृ॰ 169)

'साक़ी' युगीन जीवन के प्रति भी सचेत थे। उन के काव्य में व्यंग्योक्तियों का अपना महत्त्व है। एक उदाहरण देखिये –

हिन्दी अनुवाद :

'सचाई के दावेदार! तनिक सुन

झूठ की हुई दस्तार बन्दी स्वर्णपगा से'।

('जदीद कॉशिर शॉयिरी'– डॉ॰ हामिदी कश्मीरी– पृ॰ 172)

या

'तहज़ीब की इस बस्ती में
कमी है मानव मूल्यों की।'

('मनसर'– 'साक़ी'–ग़ज़ल–पृ॰ 113)

'साक़ी' अपनी भव्य सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परम्परा के प्रति न केवल सचेत हैं अपितु ईमानदार भी हैं। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों एवं रहस्यवादी प्रवृत्तियों के प्रति उन के मानस का झुकाव इस तथ्य की ओर संकेत कर रहा है कि साक़ी जीव, जगत, माया और ब्रह्म के पारस्परिक सम्बन्ध से अवगत होना चाहते थे, यही उन की विकासोन्मुख काव्य–प्रतिभा का प्रमाण है।

साक़ी ने ज़िन्दगी को उस के वास्तविक रूप में जिया है। आज के ज़माने में खुद अपने आपको पहचानना भी एक विकट समस्या है। दुर्भाग्य यह है कि आज हर आदमी अभिनेता बन कर स्वयं अपने आप को ठग रहा है अथवा ठगने का व्यर्थ प्रयत्न करता है, साक़ी समकालीन जीवन के इस यथार्थ से परिचित थे।

भाग–आ

सन् 1989–90 में लाखों कश्मीरी पण्ड़ित मातृभूमि से निष्कासित हो गये। इन के साथ चर्चित साहित्यकार, कवि, बुद्धिजीवी कलाकार एवं संगीतकार भी विस्थापित होकर देश के विभिन्न प्रान्तों में रहने लगे। विस्थापित होकर उन्होंने एक संकल्प के साथ साहित्यिक साधना आरम्भ की।

इस सन्दर्भ में मेरी 154 पृष्ठों की हिन्दी पुस्तक 'साहित्य और विस्थापनःसन्दर्भ कश्मीर' 2003 ई॰ में प्रकाशित हुई है। मैंने इन रचनाकारों के साहित्य पर विस्तार के साथ कार्य किया है और आज भी निरंतर लिख रहा हूँ। इस संदर्भ में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बातों पर संक्षेप में प्रकाश डालना चाहता हूँ–

1. विस्थापित कश्मीरी कवियो में सर्वश्री अर्जुनदेव मजबूर, स्वर्गीय गुलाम रसूल सन्तोष, स्वर्गीय मोती लाल साक़ी, फारूक़ नाज़की, मोहन लाल आश, प्रेमनाथ शाद, मक्खन लाल कँवल, जवाहर लाल सरूर, जगन्नाथ सागर, स्वर्गीय काशीनाथ बागवान, प्यारे हताश, पृथ्वीनाथ कौल सायिल, श्रीमती बिमला रैणा, श्रीमती सुनीता रैणा, श्रीमती प्रभा रैणा, श्रीमती मोहिनी कौल, श्रीमती गिरिजा कौल, श्रीमती संतोष नादान, ब्रज हाली, मोती लाल मसरूफ, बालकृष्ण संन्यासी, बद्रीनाथ अभिलाष, सोमनाथ वीर, कल्हण कौल, प्रेम नाथ प्रेम आदि चर्चित हस्ताक्षर हैं।

2. आतंक, आतंकवाद, विस्थापन की यातना और अपने ही देश के भीतर रफ्यूजी (शरणार्थी) बनकर जीने की पीड़ा इन कवियों की रचनाओं में अश्रुसिक्त अभिव्यक्ति के साथ साकर रूप में मुखर हो उठी। पिछले बीस वर्षों में जितनी कश्मीरी काव्य रचनाएँ जम्मू और देश के अन्य शहरों में प्रकाशित हुई हैं उस संख्या की तुलना में कुछ कम ही रचनाएँ कश्मीर घाटी में छप चुकी हैं। यह एक सर्वविदित सचाई है।

3. इन कवियों की रचनाओं में विस्थापन, विश्वासघात, स्वप्नभंग, मानव त्रासदी, मूल्य अवमूल्यन, मृत्युभय, अस्तित्व–पीड़ा, मानसिक अशान्ति, व्यापक स्तर पर नरसंहार, राजनीतिक दाँवपेच और नेतागिरी, तम्बुओं में जीने की विवशता, एक कमरा काल कोठरी आवास, अपमानित मानव समाज का कमज़ोर आक्रोश, नेतागिरी, झूठे आश्वासन, बेरोज़गारी और बीमारी, रिलीफ़ पर जीने की विवशता, बन्धुत्व के नये रूप, छिन्नभिन्न हुई सामाजिक व्यवस्था, भीषण गरमी, कैम्प में जीने की विवशता, भाषण और राशन जाने कितने नये विषय, नई सम्भावनाओं के साथ कविता के द्वारा अभिव्यक्त होने लगे। एक तरह से कश्मीरी कविता का नया त्रासद रूप जनमानस का प्रतिनिधित्व करता हुआ तथा इतिहास के झूठे सच पर प्रश्नचिह्न लगाता हुआ विकसित हो रहा है।

4. इन रचनाओं में गहन इतिहास बोध देखने को मिलता है।

कश्यपमर का भव्य इतिहास, शारदापीठ का स्वर्णिम अतीत, अभिनव गुप्त का 'तंत्रालोक' क्षेमेन्द्र का 'दशावतार चरित', कल्हण की 'राजतरंगिणी', आनन्द वर्धन का 'ध्वन्यालोक', लल्लेश्वरी के 'वाख' और शैख़ नूर–उ–द्दीन के श्रुक (श्लोक) यही तो हमारी सांस्कृतिक विरासत है। कवि इस विरासत पर आस्था व्यक्त करते हुए जीवन जीने के अदम्य उत्साह के साथ साधनारत दिखाई दे रहा है। उसका निजी अनुभूत सत्य अभिव्यक्ति के हेतु मचल रहा है।

5. अपनी मिट्टी की भीनी–भीनी सुगन्ध से विस्थापन की कविता महक रही है। यह इस कविता का एक विशिष्ट आकर्षण है। व्यंग्य–विनोद, आक्रोश और विद्रोह व्यवस्था को बदल डालने के लिये न केवल उत्तेजित करता है अपितु मानस के वीराने में विद्रोहात्मक चिनगारियाँ भी सुलगा देता है।

6. इतनी भयंकर स्थिति का सामना करने के बावजूद विस्थापन की कविता में सशक्त आशावादी स्वर गूँज रहा है। तमस अन्धकार के पश्चात् विपत्ति के बादल छँट जायेंगे और पुनः होगा उम्मीदों का सूर्योदय। काश! ऐसा होता। लेकिन कवि ने भविष्यवाणी अवश्य की है।

7. विस्थापन की कविता में अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक विशेष आकर्षण कविता के 'मिनी' आकर में देखा जा सकता है। 'मिनी' कविता समसामयिक कश्मीरी कविता की एक विशेष उपलब्धि है। मैं केवल एक कवि की कविताओं में से दो तीन उदाहरण देकर बात समाप्त कर दूँगा।

प्रेमनाथ 'शाद' एक अनुभवी चर्चित कश्मीरी कवि हैं। विस्थापन के बाद उन का एक काव्य संग्रह 'सर्वशिहुल (सरोशीतल) शीर्षक से सन् 2001 ई॰ में प्रकाशित हुआ। उन का बहुचर्चित काव्य– संग्रह 'याद़न हुन्द आदन गाम' (यादों में बसा पुश्तैनी गाँव) सन् 2006 ई॰ में प्रकाशित हुआ। 'शाद' की एक ग़ज़ल के दो अश्'आर पेश कर रहा हूँ–

हिन्दी अनुवाद :

'गोमाता को पहनाई गेंदे की माला

अलसी कली की एक मुठी सूखी ही खिलाई, चल दिया।
पद बन्धन में बाँध दिया नव जात बाछे को
चूमा उसे, ममता को भुलाकर, चल दिया।

('सर्व शिहुल'–'शाद'–पृ॰ 15)

यथार्थ से कोई बच नहीं सकता। श्रृंगारिक कवि ग़ज़लगो 'शाद' के सपने जब बिखर गये तो लगा कि ज़िन्दगी बेमानी हो गई। वे लिखते हैं–

हिन्दी अनुवादः

'प्रखर धूप
चर्म अधजला
हृदय विह्वल
***
संगीतकारों के गले में साँकल
पथ बिछुड़े पक्षी की हालत
अकेलेपन का एहसास
विवशता और निराशा
जीवन व्यर्थ निरर्थक।'

('सर्व शिहुल' 'शाद'–पृ॰ 111)

कभी–कभी तो मात्र एक स्मृति ही 'शाद' के हृदय में तूफ़ान खड़ा करती है। अपने देश की मिट्टी में सना अंग–अंग सिहर उठता है और 'ज़ुव छुम ब्रमान गर गछ़ हा' (मचलता है जी घर जाने के हेतु) की कैफ़ीयत (दशा)छा जाती है। यादों की दुनिया में खो जाना कभी–कभी बड़ा कष्टदायक होता है नहीं तो शाद यह कहने के लिये विवश नहीं होते–

हिन्दी अनुवादः

'याद आया मानो सौ सीढ़ियाँ नीचे लुढ़का
जो विपदा टूट पड़ी, छुपाऊँ उसको कब तक
यह एकान्त चीर रहा कलेजा नश्तर लेकर
घावों की पीड़ा सह लूँ मैं कब तक

बहार और शालमार पर पड़ गई कुदृष्टि
पाँव–पाँव यात्री बना रहूँ मरूभूमि में कब तक।

('सर्वशिहुल' पृ॰ 62)

भाग–इ

समसामयिक युग में घाटी के भीतर बुद्धिजीवी कवि निरन्तर साधनारत रहा। वह चक्की के दो पाटों में पिसता चला गया। मुझे उस के जीवन संकट की सम्यक् जानकारी है। वह बुद्धिजीवी है, सब कुछ समझता है और साहस करके कभी–कभी बात संकेतों में कह भी देता है। मुझ विस्थापित पर प्रकृति की मार पड़ रही है और वह नृशंस मानव के शक्ति प्रहार से क्षुब्ध है। एक संतुलित मस्तिष्क से उसे आज जानने पहचानने की आवश्यकता है। हो सकता है कि आज जो कुछ वह कह नहीं पा रहा है वह उस की विवशता हो।

कश्मीर घाटी में आज ज्ञानपीठ पुरस्कृत कवि रहमान राही, पद्मश्री अमीन कामिल, मरग़ूब बानहाली, ग़ुलाम नबी ख़्याल, ग़ुलाम नबी फ़िराक़, ग़ुलाम नबी गौहर, सईद रसूल पापुँर, रफ़ीक़ राज़, शफ़ी शौक़, शाद रमज़ान, मशल सुलतानपुरी, मजरूह रशीद, फ़याज़ दिलबर, फयाज़ तिलगामी, रंजूर तिलगामी, ग़ुलाम रसूल जोश, शाहिद बड़गामी, नईम कश्मीरी, अयाज़ रसूल नाज़की और रशीद शाहनाज़ आदि सर्जन के क्षेत्र में सक्रिय हैं।

आधुनिक कश्मीरी कविता के इतिहास में ज़िला डोडा का योगदान भी अविस्मरणीय है। किश्तवाड़, भद्रवाह, रामबन एवं बानिहाल क्षेत्र में रहने वाले कश्मीरी कवियों में रसाजाविदानी, बशीर बदरवाही, ग़ुलाम नबी डोलवाल, 'असीर' किश्तवाड़ी, मंशूर बानहाली आदि पर्याप्त चर्चित हैं। प्रसिद्ध कवि प्रोफ़ेसर मरग़ूब बानहाली बानिहाल के ही मूल निवासी हैं। डोडा क्षेत्र के कश्मीरी कवियों का चिन्तन और संगीतमय अभिव्यक्ति की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व है। इन की अभिव्यक्ति में अद्भुत माधुर्य है।

आज कश्मीर घाटी का कवि विश्वस्तर पर चिन्तन और प्रयोग

की दृष्टि से विश्वमानस के साथ जुड़ गया है। आतंकवाद ने वर्षों से उसे कुंठित कर दिया लेकिन आज क्षुब्ध भावानुभूतियाँ कविता के माध्यम से सांकेतिक भाषा में अवश्य व्यक्त हो रही हैं। आज घाटी का कवि पढ़ा लिखा बुद्धिजीवी है और कई भाषाओं के साहित्य का पारखी।

ग़ुलाम नबी खयाल कृत 'रुबयाति उमर ख्याम' (प्रकाशनवर्ष 1963 ई॰ द्वितीय संस्करण 2007 ई॰) उमर ख्याम की फ़ारसी रुबाइयों का कश्मीरी काव्यानुवाद घाटी में मूल रचना से कही अधिक चर्चित रहा है। ख़याल ने अपनी समस्त सृजनात्मक कला को अनुवाद के हेतु प्रयोग में लाया है। इधर सन् 2005 ई॰ में सन् 1970 से 2000 ई॰ तक की उन की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का संकलन 'इलहाम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। वे उच्चकोटि के चर्चित पत्रकार हैं और पिछले बीस वर्षों के घटनाचक्र ने उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा को पर्याप्त प्रभावित किया है। ख़याल समकालीन अस्पष्ट (ambiguous) और दुर्बोध/(दुरूह)/गूढ (obscure) काव्य लेखन से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हुए हैं। वे अपने यथार्थ से जुड़े एक बुद्धिजीवी कवि हैं, समय के थपेड़ों से आहत–

हिन्दी अनुवाद :

1. *वही पृथ्वी वही आकाश*
फिर भी ध्वस्त ध्वस्त सा–लगता सब कुछ
यह गुलाब है वक्ष–घाव सा,
वह गुलिलाला–कलेजा–चीरता सा

('इलहाम–'ख़याल' पृ॰ 20)

2. *कल जो सत्य था वह आज अफ़साना है, क्या कहूँ*
समझ ले बात मेरी स्वयं, मैं परदा उठा कर क्या कहूँ।

('इलहाम–'ख़याल' पृ॰ 27)

3. *दोपहर (मध्याह्न) में ये दिन काले पड़ गये,–*
इन्हें ही व्यवहार में लाकर रह प्रसन्न
रोशनी के दिन कहाँ ढूँढ रहे हो,
शहर–गाँव से वे दिन चले गये।

('इलहाम' पृ॰–30)

ख़याल के ग़ज़लों का अपना सौन्दर्य है, अपना आकर्षण है, भावानुभूति का माधुर्य है, बौद्धिक चिन्तन की उष्णता है, प्रेम का तारल्य है और प्रकृति सौन्दर्य की रूप–छटा। यहाँ तीन अश्‌आर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहा हूँ–

हिन्दी अनुवाद :

1. *'मुझ पर यहाँ भाँति–भाँति से दोषारोपण हुआ*
चोर और हत्यारा नाम पड़ा
फूलों की भर ली चाह मैंने भी
काँटों से हुआ श्रृंगार मेरा

('इलहाम'– पृ॰–20)

2. *'बाज़ार के पीछे पड़ गये इस तरह से–*
ये पराये दुकानदार ये बिरानी दुकानें
लगता है मुझे अपने ही देश के भीतर
अपना आप पराया।'

('इलहाम' पृ॰–20)

3. *शहरवासी मनमीत से कहने गये थे*
'ख़याल' ने शहर छोड़ दिया
सुन कर हंस लिया और कहा उनसे
'इंसान के हाथ में कुछ तो नहीं'।

('इलहाम'–पृ॰–73)

रफ़ीक़ राज़ समकालीन कश्मीरी कविता के एक चर्चित हस्ताक्षर हैं। 'नय छि नालान' काव्य संग्रह सन् 1995 ई॰ में प्रकाशित हुआ और 'राज़' साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुए। इन का दूसरा काव्य संग्रह 'दस्तावेज़' सन् 2006 ई॰ में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में 160 ग़ज़लें संगृहीत हैं। 'राज़' ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि वह किसी प्रवृत्ति या 'वाद' के हेतु नहीं लिख रहे हैं। अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य की सम्यक् जानकारी होने के बावजूद वह ललद्यद, शैख–उल–आलम और कश्मीर के सूफ़ी काव्य से अधिक प्रेरित हुए हैं।

वह उन लोगों की चिन्तन प्रणाली, विचार पद्धति, स्वार्थमय

प्रकृति, स्वभावगत वैशिष्ट्य, आन्तरिक उथल–पुथल आदि से अधिक प्रभावित हुए हैं। ये वही लोग हैं जो 'राज़' के साथ–साथ जीवन के यथार्थ से जूझ रहे हैं। 'राज़' अस्पष्ट और दुर्बोध यथार्थ को उस के सहज और स्वाभाविक रूप में देखने के इच्छुक हैं। उन्हें कृत्रिम हावभाव से घृणा है और पश्चिमी पॉलिश में कोई दिलचस्पी नहीं है।

'राज़' एक सफल ग़ज़लगो शाइर हैं। उन्होंने ग़ज़ल लिखते समय काव्यशास्त्रीय बन्धनों का विशेष ध्यान रखा है। 'राज़' की अभिव्यक्ति में हिन्दी भाषा का प्रभाव भी देखने को मिलता है। प्रेमाकर्षण की विशिष्ट स्थितियाँ, विरह पीड़ा, नवीन उद्‌भावनाएँ, प्रकृति का हर्षोल्लास, मनोरम दृश्यचित्र और समसामयिक यथार्थ 'राज़' की रचनाओं में एक साथ देखने को मिलता है। 'राज़' कहीं–कहीं अपनी अभिव्यक्ति में रहस्यवादी हो जाते हैं लेकिन इस दिशा में वह धुंधलकों में खो जाते हैं, इसका कारण सम्भवतः यह है कि 'राज़' के पास कोई निर्दिष्ट अध्यात्म ज्ञान या साधना पद्धति नहीं है।

'राज़' छोटी बह्र (छन्द) की ग़ज़लें लिखते हैं और निरन्तर नव प्रयोग करने में विश्वास रखते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैः–

हिन्दी अनुवादः

1. परम्परा के प्रति बिना कारण उपेक्षा भाव

'आदि काल के इस बड़प्पन का रक्षण नहीं कर पाये
प्राक् कालीन फ़सीलों में कभी टिपकारी नहीं की।'

('दस्तावेज़'– रफ़ीक़ 'राज़'– पृ.–33)

2. बलवती इच्छा

'काश बसंत बयार लौट आता
और उजड़े चमन को सम्बाल लेता
पहले की तरह ग्राम मार्गों पर
तिलहन पुष्पित हो उठता।'

('दस्तावेज़'–पृ.–39)

3. स्वर्णिम अतीत

'तब तप–ऋषि बहुत हुए होंगे और तपोवन आबाद.
किसी को अब इस सृष्टि पर याद नहीं कि वे अप्सराएँ
–कब उतरी थीं।'

('दस्तावेज़'–पृ॰–49)

4. यथार्थ बोध

'गत समय में ज़िन्दगी के नग़मे जिन से थे प्रवाहित
आज वे जल स्रोत सूख चुके हैं तो क्या करें?'

('दस्तावेज़'–पृ॰–175)

5. कटु यथार्थ– पराश्रित कश्मीरवासी

'कहते हैं कि आज हर घर की अपनी वाटिका है
तो भी साग और दाल बाहर से आते हैं।'

('दस्तावेज़'–पृ॰–150)

6. विस्थापित कश्मीरी पण्डित

'आधे पूना में हैं और आधे राजस्थान
आधे त्रिकूटा नगर (जम्मू) में हैं आधे सरवाल (जम्मू)।'

('दस्तावेज़'–पृ॰–151
'हिजरतस मंज़' नज़्म से उदधृत)

प्रोफ़ेसर भाफ़ी भौक कश्मीरी भाषा के एक मर्मज्ञ विद्वान शोधार्थी अध्यापक, गद्यलेखक एवं कवि हैं। साहित्य के इतिहास से लेकर काव्य के सर्जन तक उन्होंने संघर्षपूर्ण यात्रा तय की है। अपना अध्यापन जीवन कश्मीर विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग में प्रवक्ता के रूप में आरम्भ किया और आज कल इसी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर कश्मीरी विभाग के विभागाध्यक्ष हैं। शौक़ के लेखन और चिन्तन पर यूरोपियन साहित्य एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ चुका है। विदेशी साहित्यिक प्रवृत्तियों से अतिशय प्रभावित होकर वे उस के प्रवाह में बह जाते हैं और उनका सर्जनात्मक साहित्य (विशेषकर कविता) लोक मानस से अलग होकर बुद्धिजीवियों तक ही सीमित रह जाता है। उन की अधिकांश काव्य रचनाएँ आम जनमानस का

प्रतिनिधत्व नहीं करती हैं। लगता है कि दर्शन– शास्त्र का कोई ज्ञानी विद्वान चिन्तन की तुला पर एक–एक शब्द को तोल कर कविता के सर्जन हेतु प्रयोग में लाता है। मैं वस्तुतः उस विशिष्ट काव्य प्रभाव और चिन्तन पद्धतियों की ओर संकेत कर रहा हूँ जिन्होंने शौक़ को अस्पष्ट, दुरूह/गूढ बना दिया है। मैंने सन् 2004 ई॰ में प्रकाशित उन के काव्य संग्रह 'याद आसमानन हज़' का गहन अध्ययन किया। संग्रह में 118 कविताएँ हैं, जिन में 39 ग़ज़लें भी हैं। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि शौक़ एक अनुभवी विद्वान हैं। यूरोपियन साहित्य के मर्मज्ञ जानकार। सर्जन के क्षेत्र में उन्होंने अद्वितीय रचनाओं का प्रणयन किया है लेकिन दुरुह अभिव्यक्ति के कारण वे सर्वजनमानस को उद्वेलित नहीं कर सके हैं।

आजकल प्रायः यह कहा जाता है कि नई कविता को पहचानने हेतु गहन ज्ञानदृष्टि, इतिहास बोध और परिपक्व मस्तिष्क की आवश्यकता है। भावानुभूति अप्रधान बन चुकी है। कवि शब्द जोड़ने के लिये उड़ान भरता है, यह मालूम नहीं पड़ता कि वह किस दिशा में कहाँ उड़ रहा है। काश! वह ज़मीन पर पैर टिकाता। यह भी कहा जाता है कि नये कवियों की कविता का आंकलन भविष्य में होगा, आने वाले समय में इस का यथार्थ बोध होगा।

मैं बड़ी नम्रता के साथ अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहना चाहता हूँ कि शफ़ी शौक़ एक विशिष्ट बौद्धिक वर्ग तक ही सीमित रह जाते हैं। लेकिन इतना होते हुए भी वे अपने समकाल की अपेक्षा नहीं कर पाये हैं। वे भी सत्य कथन को टाल देते हैं क्योंकि वर्षों आतंकी माहौल में रहने के कारण वे क्षुब्ध भी हैं, क्रुद्ध भी हैं और विवश भी–

हिन्दी अनुवादः

'स्वर्णिम नगर भस्म हुए
भौकँ रहे हैं कुत्ते देवालयों की ड्योढ़ियों पर।'

('याद आसमानस हज़'–पृ॰–13)

'शौक़' की रचनाओं में मौलिक उद्‌भावनाएँ एवं अद्‌भुत काव्य प्रयोगः

'वह पुष्प जो पर्वत शृंगों पर स्वतः फँफूद से खिलता है

कोई फूल नहीं भाया, केवल उस पुष्प को चुना'

('याद आसमानन हज़'–पृ.–17)

परम्परागत ग़ज़लगो शाइरों की शैली और अभिव्यक्ति को अस्वीकृत करते हुए शौक़ अपनी काव्य प्रयोगशाला में नित नये प्रयोगों में व्यस्त दिखाई देते हैं। अनेकार्थी शब्दों के माध्यम से वह कोई शब्दचित्र या काव्यबिम्ब उबारने का प्रयास करते हैं। उन की एक ग़ज़ल का यह पद देखने योग्य है–

हिन्दी अनुवादः

'धूप प्रभायुक्त कर दे संसार, नाम और ख्याति सब कुछ
यदि यहाँ कुछ रह सकता है तो उसे गँवाना जानें।'

('याद आसमानव हज़' – पृ.22)

इस पद में 'धूप' और 'गंवाना' बहुार्थक शब्द हैं और अनेक प्रकार से इन की व्याख्या सम्भव है।

आम आदमी का बौद्धिक स्तर वह नहीं है जो कवि महोदय का है अतः सर्जनात्मक साहित्य की अनमोल विभूतियाँ उन्हें छू भी नहीं सकती हैं। समकालीन कविता की यह एक त्रासद स्थिति है और शौक़ अपने आप को इस से बचा नहीं पाये हैं।

आज के कृत्रिम जीवन व्यवहार से कवि क्षुब्ध और हताश होकर स्वयं अपने असहाय अस्तित्व को कोस रहा है। एक पीड़ित मसख़रे के रूप में ठहाके लगा रहा है लेकिन भीतर ही भीतर क्षुब्ध और विवश भी दिखाई दे रहा है–

हिन्दी अनुवाद :

'इतना रोता..............इतने आँसू बहाता...........कि
लम्बे सूखे के बाद हवा में नमी आती
इतने समय से लटकती यह धूल थम जाती
पृथ्वी के फटे वक्षस्थल पर नई कोपँले फूट निकलती
और इसे ढक लेती
हवा में माटी की सुगन्ध महक उठती

***

दुखित मसखरा हूँ
अपने ही साथ
ठहाके लगाता।'

('याद आसमानव हज़'—पृ॰—26)

शौक़ की रचनाओं में मुझे एक विशेष आकर्षण देखने को मिला। 'लघु ही सुन्दर है'—उन्हें इस बात पर विश्वास है। उन की अधिकांश रचनाएँ संक्षिप्त आकार की हैं।

शौक़ की रचनाओं में प्रकृति का विशेष योगदान रहा है। प्रकृति उन की सर्जन प्रक्रिया में नाना रंग बिखेरते दिखाई देती है। वस्तुतः प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से ही शौक़ अभिव्यक्ति के गूढ़ रहस्यमय चित्र उकेरता है। प्रकृति उन्हें अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती है। एक दार्शनिक मार्गदर्शक के रूप में शौक़ प्रकृति को अभिव्यक्ति के एक सशक्त साधन के रूप में व्यवहार में लाता है। प्रकृति संदेशिन् की भूमिका निबाहती है। मुझे यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि यहाँ प्रकृति का रंगीन सौन्दर्य अप्रधान और रहस्यमय कलात्मक अभिव्यक्ति प्रधान हो जाती है।

भाग—ई

मैं संक्षेप में समकालीन कश्मीरी कविता की प्रमुख उपलब्धियों की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ—

1. आज घाटी का पढ़ा—लिखा बुद्धिजीवी समाज कश्मीरी कविता की ओर आकर्षित है।
2. कश्मीर का प्रबद्ध कवि आज अपने युग के साथ जीने का प्रयास कर रहा है। वह अपने वर्तमान के प्रति सचेत है और यही दुखद वर्तमान आज उसे सर्जन की प्रेरणा दे रहा है।
3. आज कश्मीरी कविता केवल कश्मीर घाटी तक ही सीमित नहीं है अपितु विस्थापित जनसमाज के द्वारा घाटी से बाहर जम्मू और भारत के अन्य प्रदेशों में विकासोन्मुख दिखाई दे रही है। घाटी के बाहर आज कई पत्र—पत्रिकाओं का प्रकाशन (कश्मीरी भाषा में

अथवा कश्मीरी–भाग के साथ) इस बात का प्रमाण है कि कश्मीरी भाषा में काव्य लेखन आज कश्मीर तक ही सीमित नहीं है। इन पत्र– पत्रिकाओं में 'कोशुर समाचार' नई दिल्ली; 'क्षीरभवानी टाइम्स' जम्मू, 'शुद्ध विद्या' जम्मू, 'नागराद' जम्मू, 'वाख' नई दिल्ली, 'मिलच़ार' मुम्बई, 'आलव' बंगलोर आदि पाठकों के ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन चुके हैं।

4. आतंकी हाहाकार ने घाटी और घाटी के बाहर कश्मीरी कवि को अत्याधिक प्रभावित किया है। आज जब मैं यह शोधपत्र लिख रहा हूँ। साम्बा शहर (जम्मू) में आतंकी हमले में जम्मू कश्मीर राज्य के प्रसिद्ध फोटो पत्रकार अशोक सोधी (दैनिक ऍकसलशर, जम्मू) शहीद हुए और साम्बा शहर में रहने वाले श्री होशियार सिंह साम्बयाल एवं उन की श्रीमती शशिबाला की आंतकियों के द्वारा निर्मम हत्या हुई (11–05–2008)। समस्त जम्मू दहल उठा।

बहुत समय तक घाटी में कवि इस वस्तुस्थिति के प्रति उदासीन दिखाई देने लगा, पर यह समय की विवशता थी। रहमान राही (सियाह रुद जॅस्यन मंज़), ग़ुलाम नबी ख़याल (इलहाम), रफ़ीक़ राज़ (दस्तावेज़), शफ़ी शौक़ (याद आसमानन हज़), अयाज़ रसूल नाज़की (मकामि रास्त), फ़ारूक़ नाज़की (नार ह्योतुन कंज़ल व्रनस) आदि कवियों की रचनाएँ पढ़ कर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पीरपंचाल के दोनों तरफ़ आग बराबर सुलग रही है।

5. जदीद कश्मीरी कवि पर यूरोपियन साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा प्रचलित विचारधाराओं का भी सम्यक् प्रभाव पड़ा है। चाहे वह साम्यवाद है या मनोविश्लेषणवाद, स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) है या अस्तित्ववाद (Existentialism), बिम्बवाद (Imagism) है या अतिथार्थवाद (surrealism), प्रतीकवाद (symbolism) है या प्रयोगवाद (Experimentalism), अद्‌भुत वैज्ञानिक प्रगति है या गलोबल विलेज की अवधारणा सब ने मिलकर प्रबुद्ध कश्मीरी कवि का ध्यान आकर्षित किया है। मुझे यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि समकालीन कश्मीरी कवियों का एक वर्ग कश्मीरी कविता का कवि

है लेकिन अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य का पाठक।

6. विश्वस्तर पर 20वीं शताब्दी युद्धग्रस्त उन्माद, विनाश एवं पश्चाताप की शताब्दी है। मानवविनाश व्यापक स्तर पर हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। राजनीतिक घुटबन्दी (Factionalism) ने समाज को टुकडों में बाँट दिया है। नौकरशाही भ्रष्ट हो चुकी है और शिक्षा बिकाऊ बन गई है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने गलोबल विलेज के सपने को साकार कर दिया है। लगता है कि आज संचार माध्यम बड़भैया की भूमिका निबाहना चाहते हैं। इन परिवर्तित परिस्थितियों का शिक्षित कश्मीरी कवि पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

7. महानगरीकरण, शहरों का उत्तरोतर विकास अपनी विशेषताओं के साथ एवं विमल ग्राम संस्कृति का संकुचित होना, यह आज के युग की हक़ीक़त है जिस की अभिव्यक्ति समकालीन कश्मीरी कविता के माध्यम से हो रही है। कृषि संस्कृति के विघटन के कारण प्रकृति से अलगाव बढ़ता जा रहा है। इस विघटन की पीड़ा के स्वर कश्मीरी कविता में सुनाई दे रहे हैं।

8. आधुनिक/आधुनिकता (modernity) तथा समकालीन (contemporary) पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। आधुनिक का सम्बन्ध संवेदना, प्रवृत्ति और शैली से है, आधुनिक भावबोध से है या आधुनिकता बोध के साथ है और समकालीन तो हमारा आँखों देखा यथार्थ है। आज का कश्मीरी कवि आधुनिकता के भावबोध से परिचित है और अपने समकाल के भीतर जीने का प्रयास करते हुए वह अपने सर्जन धर्म का निर्वाह कर रहा है।

9. विस्थापन के बाद कश्मीरी कविता में भक्ति और लीला काव्य पुनर्जीवित हो उठा। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि इस कविता को पुनर्ज़ीवन मिला। पिछले बीस वर्षों में अध्यात्म से जुड़ी अद्भुत काव्य रचनाएँ कश्मीरी भाषा में प्रकाशित हुई हैं।

इस विषय पर अलग से सप्रमाण विस्तारपूर्वक लिखने की आवश्यकता है क्योंकि दुर्भाग्यवश समकालीन कश्मीरी लीला और

भक्ति काव्य को लेकर कई विद्वानों ने भ्रम फैलाया है।

10. समकालीन कश्मीरी कवि अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदार है। इस में सन्देह नहीं है लेकिन उसे निराशा और अवसाद ने ग्रस लिया है। समाज में रह कर भी वह उस से असंपृक्त (असम्बद्ध) दिखाई दे रहा है। समसामयिक युग ने उसे सचेत भी किया है और बुद्धि–चतुर भी बना दिया है।

11. समकालीन कश्मीरी कविता में महिला समाज का योगदान सर्वोपरि रहा है। आज अनेकों महिलाएँ काव्य साधना में दत्तचित दिखाई दे रही हैं। कवयित्री प्रो॰ नसीम शफ़ाई एवं सुनीता रैणा जहाँ ग़ज़ल लेखन के क्षेत्र में विशिष्ट उद्‌भावनाओं से जनमानस को मोह रही हैं वहाँ श्रीमती बिमला रैणा ने 'स्यश माल्युन म्योन' तथा 'व्यथ मा छि शोंगिथ' वाख संग्रहों के द्वारा शुद्ध–सहज–देशज कश्मीरी में वाख लेखन की अर्धमृत परम्परा में नवप्राणों का संचार किया। नई कविता के क्षेत्र में श्रीमती प्रभा रैणा (वावलन्य) के काव्य प्रयोग अद्‌भुत हैं। गीति काव्य के क्षेत्र में श्रीमती गिरिजा कौल, श्रीमती मोहिनी कौल एवं संतोष शाह 'नादान' साधनारत दिखाई दे रही हैं।

12. सामाजिक व्यवस्था के छिन्नभिन्न होने के कारण आज पारिवारिक विघटन से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं और व्यक्ति मात्र अपने तक ही सिमट के रह गया है। इलेकट्रानिक माध्यमों ने सर्जन प्रक्रिया को न केवल समय–सीमा में बान्ध लिया है अपितु बिकाऊ वस्तु भी बना दिया है। ये स्वस्थ लक्षण नहीं हैं। श्रेष्ठ काव्य लेखक आज के व्यापारिक युग में पिट रहा है, उपेक्षित हो रहा है। आज हमारे सामने पाठक की समस्या भी है क्योंकि यह अभिनय का ज़माना है जहाँ वाहवाही लूटने वाले कला के प्रशंसक अधिक हैं, कला के पुजारी नदारद। आधुनिक कश्मीरी काव्य भी इस अन्धड़ से बच नहीं पाया है।

13. सम्पन्न कश्मीरी भाषा का सर्वश्रेष्ठ रूप आज की कश्मीरी कविता की पहचान है। यह 'महजूर', 'आज़ाद', 'आरिफ़' और

'नादिम' का ज़माना नहीं हैं, यद्यपि इस क्षेत्र में नादिम का योगदान अभूतपूर्व रहा है। आज कश्मीरी बोली (भावाभिव्यक्ति और विचार विनिमय का मौखिक साधन) नहीं है अपितु सर्वशक्त, सर्वसम्पन्न भावाभिव्यक्ति का सशक्त साधन 'भाषा' है। भाषा ही नहीं, 'साहित्यिक भाषा' है। आज अभिव्यक्ति के स्तर पर निरन्तर कई प्रयोग हो रहे हैं। आज किसी सभा गोष्ठी में खड़े होकर कश्मीरी भाषा में अपने विचार व्यक्त करना गौरव की बात है, लज्जा की नहीं।

14. समयाभाव के कारण आज संक्षिप्त आकार की रचनाओं का सर्वत्र स्वागत हो रहा है। आज फ़्लैश (कौन्ध, क्षण–दीप्ति) में दृश्य या वस्तुस्थिति को प्रस्तुत करके रचनाकार प्रतिक्रिया को जानने की प्रतीक्षा में रहता है, दास्तान सुनने या पढ़ने का न साहस है और न समय। मीडिया आज हमारी सोच पर हावी हो गया है। दोनों गद्य एवं पद्य में संक्षिप्त आकार की रचनाएँ जनमानस को मोह रही हैं। आज वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक रचनाएँ प्रभावहीन हो गई हैं। अत्यन्त संक्षिप्त आकार के शोधपत्र आज चर्चा का विषय बन जाते हैं लेकिन इतना आवश्यक है कि इस प्रकार की रचनाओं के पीछे गहन अध्ययन एवं त्रुटिहीन निर्णयात्मक शक्ति का होना आवश्यक है।

समकालीन कश्मीरी कविता में भी यह प्रवृत्ति पाठक का ध्यान आकर्षित कर रही है।

15. घाटी के भीतर और घाटी से बाहर कश्मीरी भाषा में काव्यलेखन के निरन्तर प्रयोग हो रहे हैं। घाटी से कहीं अधिक प्रकाशन जम्मू में हो रहा है।

मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि भविष्य की सम्भावनाएँ महान हैं।

(11 मई सन् 2008 ई०)

कश्मीर में शक्ति उपासना : शारिका और श्रीयंत्र

भाग–1

भारत के बावन शक्ति पीठों में प्रद्युम्न पीठ/सिद्ध पीठ/शारिका पीठ/हारी पर्वत/माता शारिकापीठ/चक्रेश्‍वरीपीठ सर्वशक्तिमान, सिद्धिदायक एवं रहस्यमय पीठ है। सम्पूर्ण हारीपर्वत को तनिक ध्यान में लाइये, यह वास्तव में माता शारिका का गुप्तवास है। गुप्तवास की एक 'ज्यॉमिट्रिकल फिगर' (Geometrical Figure) जिस के विभिन्न कोणों, तिकोनों एवं दलों में शक्ति माँ विभिन्न रूपों में विराजमान है।

वस्तुत : देखा जाये तो कश्मीरी पण्डित शक्ति उपासक हैं और कश्मीर भारत का सर्वचर्चित शक्ति पीठ है। आज भी मेरे पास कश्मीर घाटी में विद्यमान चौबीस शक्ति स्थलों की सूची है जो इस बात का प्रमाण है कि आदिशंकराचार्य कश्मीर पहुँच कर दुविधा में पड़ गये थे और अंत में शारदा के महापंडितों के सामने उन्हें इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ा कि शिव, शक्ति के बिना अपूर्ण है। शक्ति ही उन्हें गति प्रदान करती है और विकास के हेतु प्रेरित करती है।

कश्मीर के प्रसिद्ध शक्ति स्थल इस प्रकार हैं:–

देवीस्थल का नाम	स्थान	सूचना वि□ोश
1) माता शारदा	शारदा गाँव (तहसील शारदा,	किशन गंगा नीलम, मधुमती

	ज़िला मुज्ज़फराबाद पाक अधिकृत क्षेत्र)	एवं सरगन (सरस्वती) के संगम पर स्थित
2) माता भद्रकाली	हँदवाडा–कश्मीर	
3) चंडी देवी	चंडी गाम, लोलाब–कश्मीर	
4) शैल पुत्री	बारामूला–कश्मीर	वृषभ वाहन
5) हारी पर्वत / माता शारिका	श्रीनगर–कश्मीर	
6) तुलमूला / माता क्षीरभवानी	देवी राज्ञण्या तुलमूला, गांदरबल–कश्मीर	
7) बालिका देवी	बालहामा–खानमुह–कश्मीर	
8) खंडशिला भगवती	ज़्यवन–खानमुह–कश्मीर	
9) ज्वाला देवी	खिव–कश्मीर	
10) ज्येष्ठा देवी	ज़ीठयॉर–श्रीनगर	
11) माता रूपभवानी	चश्मासाहिबी / मनिगाम (वोतॅशन) लार / वासकुर–कश्मीर	
12) माता उमादेवी	उमानगरी–उत्तरसू (ब्रारि ऑंगन–दक्षिण कश्मीर)	
13) शिवा भगवती	ॲकिन गोम, कुकरनाग–कश्मीर	
14) राज्ञण्या देवी	मंज़गाम–कुलगाम–कश्मीर	
15) त्रिपुर सुन्दरी देवी	दिवसर, काज़ीगुंड–कश्मीर (खन बरन्यन)	
16) ब्रारिमॉज (राज्ञण्या देवी)	मुरन, पुलवामा–कश्मीर	
17) भर्गशिखा भगवती	मार्तण्ड़–कश्मीर	
18) वितस्ता माता	व्यथवातुर, वेरीनाग–कश्मीर	
19) कॅज मॉज	लुकभवन, अनन्तनाग–कश्मीर	
20) मंगला देवी	वची, शोपयान–कश्मीर	
21) बॉदपुर राज्ञण्या देवी	बॉदपुर, तहसील चाडोरा–कश्मीर	
22) जयादेवी	ज़ैनपोरा, शोपयान–कश्मीर	

23) राज्ञण्या देवी	रॉयथन, तहसील और ज़िला बडगाम–कश्मीर	
24) भवानी गाम (बानगाम)	कुंज़र, टंगमर्ग–कश्मीर	भवानी नाग (जलस्रोत)

मैं यहाँ एक चर्चित कथा का उल्लेख करना चाहता हूँ। दक्षिण भारत के एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। द्रविड़ ब्राह्मण प्रतिदिन गाँव के मन्दिर में माता (देवी माँ) का पंचामृत (दूध, दही, घी, मधु, मिष्ठान) से जल अभिषेक कर पूजा अर्चना करता था और तनिक पंचामृत अपने बालक–पुत्र के लिये घर लाता था। प्रतिदिन ऐसा करते–करते कुछ समय व्यतीत हुआ। एक दिन ब्राह्मण देव को किसी आवश्यक काम से कहीं जाना पड़ा और कुछ दिनों तक उन की अनुपस्थिति में यह काम उन की पतिव्रता पत्नी करती रही, एक दिन मासिक धर्म के कारण वह प्रातः स्वयं देवी मन्दिर में न जा सकीं। उस ने विवश होकर अपने अबोध बालक को माँ का जल अभिषेक करने के लिये भेजा।

प्रातः स्नान करके बालक हाथ में पंचामृत पात्र लेकर मन्दिर पहुँचा और माँ के सम्मुख शालीनता के साथ कहने लगा – 'माँ' आज मैं तेरे लिये पंचामृत लाया हूँ, लो पी लो। जब तक पिताजी लौटेंगे मैं रोज़ तुझे पंचामृत पिलाता रहूँगा। बालक बार–बार माँ की शिलामूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर उन्हें पंचामृत पीने के लिये विनति करता रहा और जब वह हार गया तो निराश होकर रोने लगा। उसे ज़ार–ज़ार रोते देखकर अकस्मात् शिलामूर्ति में कम्पन हुई और माँ ने उसे कहा – 'ला पात्र, मैं पी लूँगी।' बच्चे ने पंचामृत पात्र माँ को थमाया और माँ ने जल पीकर पात्र लौटा दिया। देखते ही बालक ज़ोर–ज़ोर से पुनः रोने लगा – 'अरी माँ'! तुम सब जलामृत पी गयी, मेरे लिये कुछ नहीं रखा। मैं क्या पियूँगा। पिताजी रोज़ मेरे लिये जलामृत लाते थे। अब मैं क्या करूँगा और बच्चा ज़ोर–ज़ोर से रोने लगा। बच्चे के करूणाजनक रुदन से व्यथित माँ एक बार पुनः प्रकट हुई और अपना स्तन आगे करके बच्चे से कहने लगी– 'लो पीलो जितना पीना चाहते हो'। प्रसन्न

होकर बालक ने देवी माँ के स्तन से अमृत पी लिया और संतुष्ट होकर घर लौट आया। यही अमृत आगे चलकर इस द्रविड़ बालक की ज्ञानशक्ति का प्रवाहित स्रोत बन गया और यही बालक आगे बढ़कर आदिशंकराचार्य के नाम से विश्वप्रसिद्ध हुए। उन्होंने शंकर को आदिदेव मान कर अद्वैतवादी चिन्तन का दृढ़ विश्वास के साथ प्रचार किया। माँ भगवती ने उस शुद्धहृदय द्रविड़ बालक शंकराचार्य को अपने स्तनों से दूध पिलाया। तभी से अल्पावस्था में ही बालक के मुख से स्वयं सरस्वती का अमृत नाद फूट पड़ा। 'सौन्दर्य लहरी' में आदि शंकराचार्य माँ के इस वात्सल्य रूप का उल्लेख करते हुए लिखते हैं–

"तव स्तन्यं मन्ये धरणिघर कन्ये हृदयतः
पय : पारावार : परिवहति सारस्वतम इव।
दयावत्या दत्तं द्रविड़शिशुरास्वाद्य तवयत्
कवीनां प्रौढ़ानाम जनिकमनीयः कवयिता।"

(सौन्दर्य लहरी, श्लोक –75)

श्री ओमकार नाथ च्रगूँ ने इस श्लोक का कश्मीरी पद्यानुवाद इस प्रकार किया है –

"चान्यन स्तनन हय द्वॅद अमृत सागर
बखत्यन छु सारस्वत ज्ञान दिवान
चे़ चोवथन यि द्राविड़ बालक गॅलि गॅलि
तस वुज़ेय गद गद वॉनी सान्दर
चानि द्वद – ज्ञान बालकन हॅय लेछि कवितायि
बॉडि बॉडि ज्ञॉनी ति गॅय अश्चे़रस
अॅस्य अवय गुल्य गंडिथ छिय प्यवान चे़य परन
गछ़ प्रसन्न असि करी अज्ञान दूर
माता ! गछ़ प्रसन्न असि करि अज्ञान दूर"।।

हिन्दी अनुवाद :

'हे गिरिजा कन्या! हे माँ, मेरी धारणा है कि आप के हृदय से प्रवाहित होने वाला सारस्वत ज्ञान, स्तनों में से पय–रूपेण दूध बहता है। आप की दया–द्वारा पिलाये हुए दूध से द्रविड

शिशु ऐसा ज्ञानमय हुआ कि उत्तम, प्रौढ़ कवियों के समान कमनीय कवितायें रचीं जिन्हें पढ़ कर बड़े–बड़े ज्ञानी भी आश्चर्यचकित हुए।'

गद्य अनुवादक – श्री ओमंकार नाथ च्रँगू
('सौन्दर्य लहरी' पुस्तक से उद्‌धृत)

यहाँ मैं इस तथ्य का भी उल्लेख करना चाहता हूँ कि 'पंचस्तवी' एक अद्‌भुत स्तोत्र (स्तुति श्लोकों का संग्रह) है। इसे मैं श्लोकबद्ध स्तुतिपरक रचना मानता हूँ। कश्मीर तथा दक्षिण भारत में इस का प्रचार प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। इस के रचयिता कौन हैं इस विषय में पर्याप्त विवाद रहा। आज अधिकांश लोग धर्माचार्य को इस के रचयिता मानते हैं। कश्मीर के पसिद्ध विद्वान स्वर्गीय पंडित हरभट्ट शास्त्री ने इस रचना पर संस्कृत में एक विस्तृत टीका लिखी है जिस के कुछ अंश सन् 1960–63 के मध्य श्रीनगर रिसर्च डिपार्टमेंट द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

सन् 1993 ई॰ में श्री रामकृष्ण आश्रम श्रीनगर द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में स्वर्गीय जानकी नाथ कौल 'कमल' कृत 'पंचस्तवी' (अंग्रेज़ी अनुवाद एवं व्याख्या प्रधान टिप्पणियाँ) प्रकाशित हुई। 321 पृष्ठों पर लिखित पुस्तक का द्वितीय संस्करण 2001 ई॰ में प्रकाशित हुआ। सन् 2008 ई॰ में 190 पृष्ठों की पुस्तक 'श्री पंचस्तवी' अनुवाद सहित (विशेष संकेतों सहित) शैवाचार्य स्वामी लक्ष्मण जू महाराज द्वारा हिन्दी भाषा में लिखित 'ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, इश्बॅर निशात श्रीनगर से प्रकाशित हुई।

'पंचस्तवी' के पाँच स्तव है। स्तव अर्थात् स्तुतिपरक श्लोकों का विशेष संग्रह खंड। इस अद्‌भुत रचना का कश्मीरी पद्यानुवाद सर्वप्रथम पण्डित जियालाल सराफ साहब ने किया और सन् 1996 ई॰ में श्री ओमकार नाथ च्रंगू ने इस का कश्मीरी भाषा में पद्यानुवाद किया। इस का प्राक्कथन स्वर्गीय जानकी नाथ कौल 'कमल' ने लिखा है।

'पंचस्तवी' के चौथे स्तव का पहला श्लोक देखने योग्य है जिस में देवी माँ शक्ति के तीनों सामर्थ्यों (सृष्टि, पालन और संहार) से युक्त अधिष्ठात्री देवी के रूप में बल, सामर्थ्य एवं क्षमता का अद्‌भुत स्रोत मानी

गयी हैं। तंत्र शास्त्र में इसे ही परा–शक्ति कहते हैं जो लोकोत्तर होते हुए अनुभवातीत है और त्रिपुरा के रूप में विशुद्ध आनन्दमय चक्र पर राजराजेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी है:–

''यामामनन्ति मुनय : प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्य–विदो वदन्ति।
तामऽर्धपल्लवित शंकर रूप–मुद्रां
देवीमऽनन्य: शरण : शरणं प्रपद्ये।।1।।'

हिन्दी अनुवाद :

'जिसको वेदों के रहस्य को जानने वाले मुनि अनादि–प्रकृति तथा विद्या नाम से कहते हैं, उसी आप के आधे शरीर के देने से विकसित हुई शंकर रूप वाली देवी को मैं दूसरे किसी देवी देवता की शरण में न गया हुआ, शरण में आया हूँ।'

('पंचस्तवी' टीका लेखक–पंडित प्रेमनाथ शस्त्री, पृ.72)

कश्मीरी अनुवाद श्री ओमकार नाथ च्रँगू:

'यस रेश्य मनीश्वर ज़गत ज़ननी वनान
वीद ज्ञॉनी छिस शद्धविद्या वनान
शंकर सुन्द आड फोलमुत शरीर ़चय
आव येति सोरुय ज़गत वालसनस
तॅस्य ज़गत मातायि यस रास बयि न कांह
आमुत शरण छुस पादन तल।
माता! आमुत शरण छुसय पादन तल।'

यहाँ यह जानना लाभदायक होगा कि मंत्र, तंत्र और यंत्र में परस्पर क्या अन्तर है।

मंत्र– वह शब्द या शब्दसमूह है, जिससे किसी देवता की सिद्धि या अलौकिक शक्ति की प्राप्ति सम्भव हो, जैसे वेदों का संहिता भाग। मंत्र वास्तव में ईश वन्दना की ध्वनिमय अभिव्यक्ति है। हम अपने ध्वनियंत्र से सार्थक शब्द–ध्वनियों का व्यवस्थित उच्चारण कर इष्टस्तुति में लय हो जाते हैं।

तंत्र– एक व्यवस्थित सिद्धान्त पद्धति तंत्र है। तंत्र मूलत:

क्रियात्मक साधना की तकनीक है। अध्यात्म बोध के हेतु एक विशिष्ट साधना पद्धति का क्रियात्मक रूप तंत्र है। तंत्र एक रहस्यमय साधना है – विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु। जो तंत्र–पद्धति पर विश्वास करता है वह तांत्रिक कहलाता है। तांत्रिक कहलाने वाला व्यक्ति सूर्य, गणेश, विष्णु, शिव एवं शक्ति पाँच देवों (पंचदेव) में से किसी एक का उपासक हो सकता है।

'तंत्रशास्त्र' एक विशिष्ट शास्त्र है। शिव–शक्ति की पूजा और अभिचार आदि का विधान करने वाला शास्त्र। अभिचार में सम्मोहन, उच्चाटन, मारण आदि तत्त्व भी समाहित रहते हैं।

यंत्र– अंक या अक्षर से युक्त विशेष आकार या कोष्ठ जिस में देवताओं का वास माना जाता है। सिद्धपुरुष ही यंत्र–विद्या की जानकारी रखते हैं और उन्हें ही यंत्र तैयार करने की क्षमता होती है। इस में विभिन्न आकार (तिकून, वृत्त, षटकोण, चत्वर, कोष्ठ आदि) के रेखाबद्ध चित्रों के मध्य विभिन्न अंक या अक्षरों को स्थान दिया जाता है। यह वस्तुतः दैवी शक्तियों का प्रतीकात्मक वास होता है और यंत्र–विशेषज्ञ ही इन के प्रभाव से परिचित होते हैं।

आज के व्यापारिक युग में यंत्र बिकाऊ वस्तु बन गई है और बहुत से शक्ति–च्युत पण्डित यंत्र प्रदर्शन से खुले आम लोगों को लूट रहे हैं।

'श्रीचक्र' या 'श्रीयंत्र' मूलतः शिव और शक्ति के आध्यात्मिक मिलन की सांकेतिक अभिव्यक्ति है। योग साधक अथवा कुंडलिनी योग के विशेषज्ञ, अध्यात्म साधना में लीन महापुरुष या दिव्य विभूतियाँ ही श्रीचक्र के महात्म्य से परिचित होते हैं।

'श्रीचक्र' तीन वृत्तों, चौबीस कमल दल (Petals), तैंतालीस (14+10+10+8+1) तिकूनों एवं मूल बिन्दु पर आधारित एक रहस्यमय तालाबन्द यंत्र है। इस में प्रवेश के हेतु ताले को खोलने के लिये चाबी की आवश्यकता है। लाखों–लाखों चाबियों का गुच्छा आप के सामने पड़ा है। असली चाबी ढूँढने का काम साधक के ऊपर है। यदि सफलता प्राप्त हुई तो परमानन्दावस्था में अमृतपान का भागी बन जाता है और

सहस्रार अवस्था में कैलास पर पहुँच जाता है तथा हंस को मोती चुगते देख लेता है।

आज की शब्दावली में 'श्रीचक्र' इस शरीर रूपी स्यलफोन का 'सिम' कार्ड है। जिस प्रकार स्यल फोन को सिम कार्ड ही हरकत (गति) में लाता है वैसे ही 'श्रीचक्र' की पहचान मानवशरीर को हरकत में लाती है और दिव्यानुभूतियों के साक्षात्कार से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

मेरे विचारानुसार 'श्रीचक्र' त्रिपुरसुन्दरी का नौ चक्रों से घिरा हुआ एक रहस्यमय आवास है जहाँ नवें (नवम्) चक्र के भीतर बिन्दु स्वरूप में राज राजेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी शोभायमान रहती है। प्रत्येक चक्र तालाबन्द है। ताले की चाबी ढूँढना ही साधना का लक्ष्य है। यदि साधक अपने उद्देश्य में सफल होकर प्रथम चक्र की चाबी पा लेता है तो प्रवेश करते ही उस के मानस के स्क्रीन पर महात्रिपुरसुन्दरी की विभूतियाँ नज़र आने लगती हैं। आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ती है और अनायास साधक पुकार उठता है–

'अॅस्य अवय गुल्य गंडिथ छी प्यवान च़ेय परन
गछ़ प्रसन्न त असि करी अज्ञान दूर।।
माता! गछ़ प्रसन्न असि करी अज्ञन्यान दूर।'

हिन्दी अनुवाद :

'हम करबद्ध नमन करते हैं तेरे सम्मुख
प्रसन्न होकर हमारे अज्ञान को हर ले, माता!
प्रसन्न होकर हमारे अज्ञान को हर ले।'

(20 अप्रैल, 2008 ई॰)

कश्मीर में शक्ति उपासना

भाग–2

'श्रीचक्र' का ही दूसरा नाम 'श्रीयंत्र' है – एक शक्ति केन्द्रित नित प्रवाहित अमृत स्रोत। इस के महत्त्व एवं अद्‌भुत शक्ति सम्पन्न स्वरूप की महत्ता को समझ कर ही कश्मीर खण्ड (संभाग) की राजधानी का नाम 'श्रीनगरः' अर्थात् श्रीनगर पड़ा है। जहाँ माँ–शक्ति का रहस्यमय प्रतीक स्वरूप आवास है वही श्रीनगर है, जो सुशोभित है माँ की रूप छटा से, जहाँ प्रकृति अपने अद्‌भुत अकृत्रिम सौन्दर्य से जनमानस को मोह लेती है, जहाँ हिमाच्छादित पर्वत–श्रृंग माँ के प्रहरी बनकर अपने अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध करते हैं, जहाँ अमृतस्वरूप जल–प्रवाह अपनी स्वच्छता, निर्मलता एवं पारदर्शिता से सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं वहीं श्रीनगर है। यह दूसरी बात है कि आज श्रीनगर श्रीहीन दिख रहा है, आज शारदा गाँव में माँ शारदा का शिलारूप, टुकड़ों में बिखर गया है, आज अमरेश्वर की अमर विभूति हम से छिन रही है। जाने इतिहास किस दिशा में जा रहा है और भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है–

'हम कर बद्ध नमन करते हैं तेरे सम्मुख
माँ! प्रसन्न होकर हमारे अज्ञान को हर ले।'

इस 'श्रीचक्र' के नौ परत (Layer, fold) अथवा चक्र हैं जिन में तीन वृत्त, 24 दल (16+8), 43 तिकोन (त्रिकोण) (14+10+10+8+1) तथा एक बिन्दु प्रतीकात्मक रूप में विद्यमान (उपस्थित) हैं।

प्रथम चक्र (परत) – बाह्य वृत्त
द्वितीय चक्र (परत) – दूसरा वृत्त + 16 दल

तृतीय चक्र (परत) – तीसरा वृत्त + 8 दल
चतुर्थ चक्र (परत) – 14 तिकोन
पंचम चक्र (परत) – 10 तिकोन
षष्ठ चक्र (परत) – 10 तिकोन
सप्तम चक्र (परत) – 8 तिकोन
अष्टम चक्र (परत) – 1 तिकोन
नवम् चक्र (परत) – एक बिन्दु

बिन्दुस्वरूप महात्रिपुरसुन्दरी का वास अन्तिम चक्र ही सांकेतिक रूप में परम शिव एवं शक्ति के अन्तरिक्ष मिलन का प्रतिनिधित्व करता है। भक्त जन अथवा योग–साधक इन चक्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर अध्यात्म बोध को धीरे–धीरे जाग्रत करते हैं। साधना का अत्यंत दुष्कर पथ है – 'कुंडलिनी योग साधना'। अध्यात्म बोध ही कुंडलिनी जागरण कहलाता है।

'योग' से अभिप्राय है–नियम, विधान। योग शास्त्र के रचयिता पतंजलि मुनि हैं और वेद आधारित छः शास्त्रों में योग को एक शास्त्र माना गया है। 'अष्टांग योग' से अभिप्राय है योग के आठ अंग या भाग। ये आठ अंग इस प्रकार हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। कश्मीर में 'अष्टांग योग' के अतिरिक्त 'कुंडलिनी योग' का प्रचलन भी रहा है।

'कुंडलिनी' से अभिप्राय है–दुर्गा या शक्ति का एक रूप, मूलाधार चक्र में स्थित एक शक्ति, जिसे तंत्र और हठ योग का साधक जगा कर ब्रह्मरन्ध्र में लगाने का यत्न करता है और सहस्रार में प्रवेश पाता है जहाँ मानसरोवर में राजहंस को मोती चुगते देख परमानन्द की अवस्था को प्राप्त होता है। 'सहस्रार' ही कैलास है जहाँ शिव का वास है और 'शिव' से अभिप्राय है मंगल, कल्याण एवं शुभ। कुंडलिनी योग की कुल सात अवस्थाएँ इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार – नाभि और शिश्न के मध्य स्थित एक चक्र
2. स्वाधिष्ठान – नाभि से तनिक ऊपर स्थित एक चक्र
(कुछ लोग इस का स्थान शिश्न मूल मानते हैं।)

3. मणिपूर – स्वाधिष्ठान चक्र से तनिक ऊपर स्थित एक चक्र
4. अनहद/अनाहत – इस का स्थान हृदय माना जाता है। इस पर अनाहत नाद या अनहद ध्वनि शब्द बना है (आन्तरिक ध्वनि, ओ३म् ध्वनि)
5. विशुद्धाख्य – इस का स्थान गले में माना जाता है। यह पूर्ण ज्ञानचक्र भी कहलाता है।
6. त्रिकुटी/आज्ञाचक्र – भौंहों के मध्य के कुछ ऊपर का स्थान और वहाँ स्थित आज्ञाचक्र।
7. सहस्रार – मनुष्य मस्तिष्क में स्थित सहस्रदल का एक उल्टा कमल। यहाँ पहुँच कर जीव मुक्ति प्राप्त करता है और आवागमन के चक्र से मुक्त होता है।

मैं आदि शंकराचार्य कृत 'सौन्दर्य लहरी' श्लोक संख्या–9 के द्वारा कुंडलिनी योग साधना के विभिन्न पड़ावों की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ–

–'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशम् उपरि
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रोर पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।'

हिन्दी अनुवाद :

'कुंडलिनी शक्ति रूप में आप मूलाधार में भू तत्त्व को, मणिपुर में जलतत्त्व को, स्वाधिष्ठान में अग्नितत्त्व को, हृदय अनाहत में वायु तत्त्व को और उस के ऊपर विशुद्ध चक्र में आकाश तत्त्व को, फिर भ्रूमध्य में मन को भेद कर सुषुम्ना शक्तिमार्ग से होकर सहस्रार पदम में अपने पति के साथ विहार करती हो। हे कुंडलिनी शक्ति! आप को मेरा नमन हो। (नोट–यहाँ स्वाधिष्ठान तथा मणिपुर चक्र की अवस्थिति में तनिक सन्देह है।)

'श्री त्रिपुर सुन्दर्यै'
'सौन्दर्य लहरी'–आदिशंकराचार्य
(मूल पाठ एवं अनुवाद–श्री ओम्कार नाथ चंगू–पृ॰10)

योगियों के अनुसार मानव शरीर में तीन प्रकार की नाड़ियाँ पाई जाती हैं–

1. ज्ञान वाहिनी नाड़ियाँ
2. शक्ति वाहिनी नाड़ियाँ
3. श्वास वाहिनी नाड़ियाँ

नाड़ीमार्ग में इड़ा (इंगला), पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का अपना महत्त्व है। सुषुम्ना नाड़ी के पथ से ही कुंडलिनी योग का अभ्यासी शक्ति को जाग्रत कर सहस्रार तक पहुँचाने की साधना में लगा रहता है। 'अमनावस्था' योग की उच्चतमावस्था है। ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश पाकर योगी अमनावस्था में आ जाता है। मनस् तत्त्व (Mind element) भी छूट जाता है। कुंडलिनी योग की सात अवस्थाओं के बीजमंत्र इस प्रकार हैं–

मूलाधार – लं – भू बीज लं
स्वाधिष्ठान – वं – जल बीज वं
मणिपुर – रं – अग्नि बीज रं
हृदय (अनाहत) – य्रं – वायु + अग्नि
यं + रं
शुद्धाख्य – यं – वायु बीज यं
आज्ञा चक्र – हं – आकाश बीज हं
(त्रिकूटी)

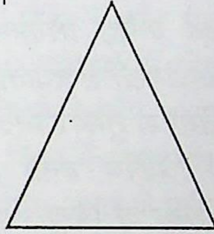
इस पूर्वपीठिका के साथ अब 'श्रीचक्र' की आकृतिव्यवस्था देखिये–

चक्र / परत	नाम	अधिष्ठात्री देवी
पहला चक्र	त्रैलोक्य मोहन चक्र	त्रिपुरा
द्वितीय चक्र (16 दल)	सर्वाशापूरक चक्र	त्रिपुरीशिन्
तृतीय चक्र (8 दल)	सर्व संक्षोभन चक्र	त्रिपुर सुंदरी
चतुर्थ चक्र (14 तिकोन)	सर्व सौभाग्य दायक चक्र	त्रिपुर वासिनी.
पंचम चक्र (10 तिकोन)	सर्वार्थ साधक चक्र (सर्व सिद्धि दायक चक्र)	त्रिपुराश्री

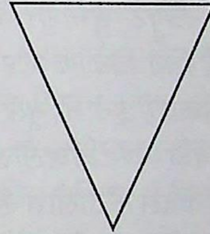
षष्ठ चक्र (10 तिकोन)	सर्व रक्षाकार चक्र	त्रिपुर मलिनी या ललिता
सप्तम चक्र (8 तिकोन)	सर्वरोगहर चक्र	त्रिपुर सिद्धि
अष्टम चक्र (1 तिकोन)	सर्वार्थ सिद्धिप्रद चक्र	त्रिपुरा अम्बा
नवम् चक्र (बिन्दु)	विशुद्ध आनन्दमय चक्र	राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी

सम्पूर्ण 'श्रीचक्र' में 4 तिकोन ऐसे मिलेंगे जो ऊर्ध्वमुखी हैं अर्थात् ऊपर की ओर मुँह किये। इन्हें 'शिव–त्रिकोण' कहते हैं। पाँच तिकोन ऐसे मिलेंगे जो अधोमुखी हैं अर्थात् नीचे की ओर मुँह किये, इन्हें 'शक्ति–त्रिकोण' कहते हैं।

शिव तिकोन

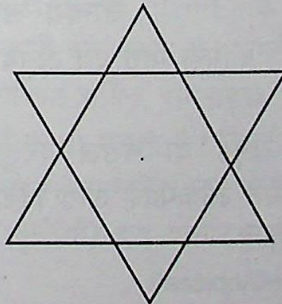


शक्ति–तिकोन



एक शिव त्रिकोण और एक शक्ति त्रिकोण को परस्पर शिव–शक्ति मिलन के रूप में मिलाइये तो षटकोण (a Hexagon, Six angled) का निर्माण होता है। धार्मिक अनुष्ठान में कलश स्थापना में इसका प्रयोग किया जाता है।

□टकोण



आदिशंकराचार्य कृत 'सौन्दर्य लहरी' के ग्यारहवें श्लोक में 'श्रीचक्र' के स्वरूप पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। मैं हिन्दी अनुवाद सहित मूल संस्कृत श्लोक को प्रस्तुत कर 'श्री चक्र' के महात्म्य को रेखांकित करना चाहता हूँ–

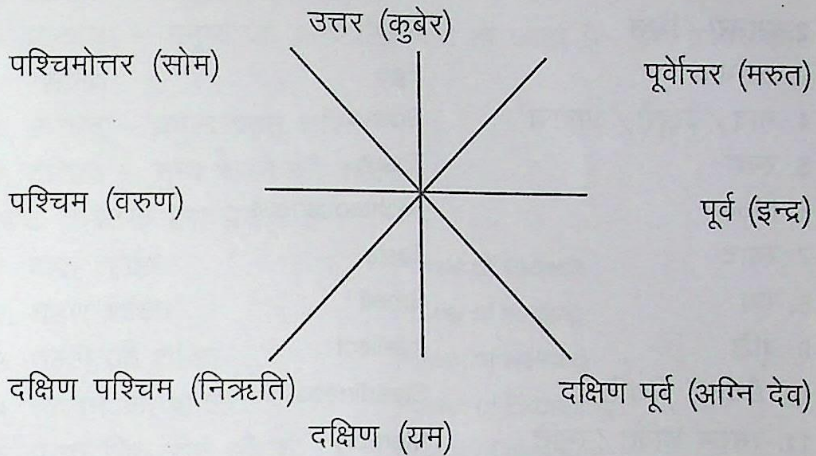
'चतुर्भि : श्री कण्ठै : शिवयुवतिभिः पंचभिरपि
प्रभिन्नाभि : शंभोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद् (त्रयश्चत्वारिंशद्) वसुदल–कलाश्र त्रिवलय
त्रिरेखाभिः सार्धं तवशरण कोण : परिणताः।।'

हिन्दी अनुवाद :

–'हे माँ त्रिपुर सुन्दरी! चार श्री कण्ठ, शिवात्मक ऊर्ध्वमुखी शिव त्रिकोण और पाँच अधोमुखी शक्त्यात्मक, शक्ति त्रिकोण, इन नौ मूल प्रकृतियों से तुम्हारे निवास रूप श्रीचक्र के चौवालीस (?) त्रिकोण बनते हैं। (त्रिकोण केवल तेंतालीस हैं) *ये शम्भु के बिन्दु स्थान से पृथक हैं तथा तीन वृत्तों और तीन रेखाओं सहित अष्ट और षोडश दलों से युक्त हैं। इसी प्रकार आप के प्रत्यक्ष निवास रूप श्रीचक्र का निर्माण होता है। यही तुम्हारा निवासस्थान और ध्यान का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है।'*

'श्री त्रिपुर सुन्दर्यै'
'सौन्दर्य लहरी'–आदिशंकराचार्य
(मूल पाठ एवं अनुवाद–श्री च्रंगू–पृ.–12)

इन वृत्तों का समूह या मंडल वस्तुतः तीन लोकों का प्रतिनिधित्व करता है। आठ लोकपाल, आठ दिशाओं में इस के रक्षक बनकर सेवा में लगे रहते हैं–



पूर्व दिशा में इन्द्र (अन्तरिक्ष को देवता, देवराज), पश्चिम दिशा में वरुण देव (पश्चिम के दिक्पाल, जल के अधिपति), उत्तर में कुबेर (धन सम्पत्ति के स्वामी) तथा दक्षिण में यम (मृत्यु के देवता) सेवा रत हैं। पूर्वोत्तर दिशा में मरुत देव (वायु के अधिष्ठाता देवता), उत्तर पश्चिम में सोम (चन्द्रदेव, अमृत के प्रतीक), दक्षिण पश्चिम में निऋति (दक्षिणपश्चिम कोण की अधिष्ठात्री देवी) तथा दक्षिण पूर्व में अग्नि देव आदेश पालन के हेतु दत्तचित्त (एकाग्रमन) खड़े हैं–

द्वितीय वृत्त के भीतर 16 दलों का वास है जो वस्तुतः शक्ति के 16 सूक्ष्म रूपों का बोध कराते हुए मानव प्रकृति में निहित 16 बोध तत्त्वों की प्रतीति भी कराते हैं। इसे 'सर्वआशापूरक' मंडल कहते हैं और साधक को जब इस मंडल में प्रवेश प्राप्त होता है तो वह अपनी प्रकृति के 16 बोध तत्त्वों (वृत्तियों) का गुलाम नहीं अपितु स्वामी बन कर शक्ति–कृपा का अधिकारी बन जाता है। अपने बोध तत्त्वों पर नियंत्रण पाकर साधक अपनी धारणा शक्ति, समझबूझ एवं स्मरण शक्ति के द्वारा अलौकिक प्रतिभा से दीप्त हो उठता है। त्रिपुरीशिन् के रूप में इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी इसे महिमामंडित कर देती है।

16 बोधतत्त्व (वृत्तियाँ) इस प्रकार माने जाते हैं:–

1. काम Passion/Desire

2. मानस / चित्त	Mind
3. अहंभाव	Ego
4. नाद / वैखुरी / आवाज़	Sound
5. स्पर्श	Touch
6. विवेक	Righteousness
7. स्वाद	Taste
8. गंध	Smell
9. बुद्धि	Intellect
10. धैर्य / स्थिति	Steadiness
11. स्मरण शक्ति / स्मृति	Memory
12. आत्म बोध	Name
13. विकास	Growth
14. पारलौकिक तत्त्व / अतीन्द्रिय	Etheric body
15. काया / भौतिक शरीर	Physical Body
16. पुनर्जीवन	Revivification

(संदर्भ आधार–'सतीसर'–पत्रिका (सांस्कृतिक हेरिटेज) अप्रैल–जून 2006, पृ० 3–4)

तृतीय वृत्त के अष्ट दल वस्तुतः अष्टसिद्धियों एवं अष्टशक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तनिक 'हनूमान चालीसा' को याद कीजिये। माता सीता हनुमान को तो यही वरदान देती है–

'अष्ट सिद्धि नौ निधि के धाता
अस वर दीन्ह जानकी माता
राम रसायन तुम्हारे पासा
सदा रहो रघुपति के दासा।'

ये अष्ट सिद्धियाँ शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित हैं–

1. अणिमा– अणुरूप शक्ति–योगी अणु रूप (Minute Particle, Atom) ग्रहण कर के अदृश्य हो जाता है।
2. महिमा – विस्ताररूप शक्ति
3. गरिमा – भाररूप शक्ति

4. लघिमा – लघुत्व प्राप्ति शक्ति
5. प्राकाम्य – मनुष्य जो चाहता है, वही हो जाता है– इस प्रकार की शक्ति
6. ईशित्व – प्रभुत्व प्राप्त शक्ति
7. वशित्व – मुग्ध करने की शक्ति

अष्ट शक्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. वाक् शक्ति	Power of speech
2. ग्रहण शक्ति	Power of holding
3. चलने की शक्ति	Power of walking
4. त्यागने की शक्ति	Power of Excreting
5. प्रसन्न चित होने की शक्ति	Power of pleasure
6. परित्याग शक्ति	Power of abandoning
7. ध्यान केन्द्रित करने की शक्ति	Power of concentration
8. अनासक्त होने की शक्ति	Power of detachment

इन आठ दलों की रक्षा निम्नलिखित अष्ट शक्तियाँ (योगिनियाँ) कर रही हैं–

ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, नारायणी, वाराही, इन्द्रानी, चामुण्डा और महालक्ष्मी।

इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुर सुन्दरी है। इस चक्र में वास करने वाली आठ सिद्धियाँ मनुष्य (साधक) के आठ मानसिक विकारों को नियंत्रण में रखती हैं। ये मानसिक विकार इस प्रकार हैं–

1. इच्छा	Desire
2. क्रोध –	Anger
3. कुढ़न / रश्क़ –	Envy
4. मोह / भ्रान्ति –	Delusion
5. लालच –	Greed
6. ईर्ष्या –	Jealousy
7. गुण –	Virtue
8. दुर्गुण / दुराचार –	Vice

चतुर्थ चक्र चौदह तिकोनों पर आधारित है। इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुरवासिनी है और इसे 'सर्व सौभाग्यदायक' चक्र कहते हैं। यहाँ प्रवेश पाकर साधक आनन्दमय अवस्था में अद्‌भुत विभूतियों का साक्षात्कार पा कर अपनी सिद्धि के एहसास से हर्षित हो उठता है। 14 तिकोन वस्तुतः शक्ति के 14 सूक्ष्म रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं और शरीर की 'ज्ञान वाहिनी' नाड़ियों से जुड़े हैं।

पंचम चक्र में दस तिकोन हैं। अधिष्ठात्री देवी त्रिपुराश्री है। यहाँ पहुँच कर साधक को हर प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। दस तिकोनों में दस योगनियों का वास माना जाता है। प्राणाधार श्वास प्रक्रिया पर इन का नियंत्रण रहता है। षष्ठ चक्र में भीतरी दस तिकोन हैं। इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुर मालिनी या ललिता मानी जाती है। इस चक्र के दस तिकोन शरीरस्थ दस अग्नियों (भ्राजक, रंजक, क्लेदक, स्नेहक, धारक, बंधक, द्रावक, व्यापक, मापक, श्लेष्मक को नियंत्रण में रखती हैं।)

सप्तम चक्र में आठ तिकोन हैं। इसे 'सर्व रोगहर चक्र' भी कहते हैं क्योंकि यहाँ पहुँच कर साधक पूर्ण रूपेण रोगमुक्त हो जाता है। इस की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुरसिद्धि है। इस चक्र के आठ तिकोन, मनुष्य प्रकृति विषयक आठ आभसात्मक संवेदनाओं को नियंत्रण में रखते हैं। ये आठ संवेदनाएँ (एहसास) इस प्रकार हैं–

सर्दी, गरमी, ख़ुशी, ग़म, इच्छा, सत, रज और तम अष्टम चक्र अन्तिम द्वार से जुड़ा 'सर्वार्थ सिद्धिप्रद' चक्र है। इसकी अधिष्ठात्री देवी त्रिपुराम्बा है। यह वस्तुतः 'एकोऽहं न द्वितीय अस्ति' का प्रतीकात्मक बोध है। केवल एक तिकोन–परंशिव की प्रतीति। प्रमुख है केवल उनकी इच्छा एक से अनेक होने की कामना जो सृष्टि विकास का कारण बन जाती है।

नवम् चक्र में बिन्दु स्वरूप राजरानी महात्रिपुरसुन्दरी का वास है। राज़राजेश्वरी के रूप में बिन्दु रूप सुशोभित हैं, शक्ति माँ अन्तिम चक्र में। यह वस्तुतः लयावस्था का अद्‌भुत अलौकिक एहसास है जहाँ पहुँच कर फिर लौट आने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। बूंद का विलय अथाह, असीम और अनन्त सागर के साथ हो जाता है और

साधक का क्षुद्र–तुच्छ अस्तित्व महिमामंडित होकर स्वतः असीम सागर का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार बूँद और समुद्र का अन्तर दूर हो जाता है, दोनों परस्पर एक हो जाते हैं। समस्त दूरियाँ अकस्मात् पट जाती हैं। कुंडलिनी शक्ति को सहस्रार में प्रवेश मिल जाता है। द्वार–पट खुल जाते हैं और साधक कैलास के आनन्दमय वातावरण में विचरण करने का अधिकारी बन जाता है। 'पंचस्तवी' का मुख्य प्रतिपाद्य तो कुंडलिनी योग ही है। दृढ़ विश्वास, अनन्य भक्ति और कठोर साधना ही इस के आधारभूत लक्षण हैं।

शक्ति माँ के श्रीचरणों पर नतमस्तक साधनारत साधक अध्यात्म प्रकाश से भीतर ही भीतर दीप्त हो उठता है। श्रीनगर स्थित चक्रेश्वरी का शक्ति पीठ/ सिद्ध पीठ वस्तुतः श्रीयंत्र/श्रीचक्र के रूप में राजराजेश्वरी का रहस्यमय अद्‌भुत निवास पीठ है। यहाँ शिला स्वरूप माँ के शरीर पर श्रीयंत्र स्वतः उत्कीर्ण है केवल देखने के लिये आँखें चाहिये। माँ का यही श्री–यंत्र युक्त शिला रूप ऊपर किले के मन्दिर में भी विद्यमान था लेकिन क्रूर अफ़ग़ानों के शासन काल (1753–1819 ई.) में या तो उसे खण्डित किया गया या कहीं शिला को उल्टा के मिट्‌टी में गाड़ दिया गया।

द्वारपाल के रूप में महागणेश दक्षिण पश्चिम कोण पर 'गॅणशिबल' में विराजमान हैं। परिक्रमापथ (प्रदक्षिणामार्ग) लगभग डेढ़ किलोमीटर लम्बा है जिस में महागणेश देवस्थल से आगे निकल कर सप्तऋषि (वैदिक कालीन सप्तऋषि–गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, जमदाग्नि, वसिष्ठ, कश्यप तथा अत्री और महाभारतकालीन सप्तऋषि–मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ) 'चार चिनार' (ललद्यद बोनि), 'महालक्ष्मी मन्दिर', 'सिद्धपीठ', 'देवी आंगन', 'चक्रेश्वरी पीठ', 'अमरकौल' (कृष्ण मन्दिर), 'पोखरीबल' और 'काठी दरवाज़ा' (हनुमान मंदिर) से बाहर निकल कर परिक्रमा पूरी हो जाती है।

कश्मीरी जनमानस ने विकट परिस्थितियों का सामना करते हुए 'श्रीचक्र' के प्रति अनन्य श्रद्धा और अटूट विश्वास को व्यक्त किया है। यहाँ सर्वप्रथम भोज पत्र पर केसर से श्रीचक्र का रेखाचित्र तैयार किया

जाता था। फिर सोने, चान्दी और ताम्बे के पट्ट (Plate) पर श्रीयंत्र उत्कीर्ण किये जाने लगे। तत्पश्चात् रंगकर्मी इसे अपनी आकर्षक कला के द्वारा कपड़े या काग़ज़ पर बनाने लगे।

एक बात की ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि विवाह/यज्ञोपवीत के शुभावसरों पर हमारी मातृशक्ति अपनी विशेष वेशभूषा में 'तरंगे' के ऊपर शीर्ष पर 'पूछ़' धारण करती थीं जिस पर केसर, चन्दन या सिन्दूर से 'श्रीचक्र' कुलगुरु के द्वारा बनाया गया होता था। यह अत्यन्त शुभ माना जाता था। इसे 'ट्यॅकि पूछ़' कहते हैं, इसी का बदला हुआ रूप आजकल 'ट्यॅकिताल' है जो धोती के ऊपर शीर्ष पर धारण की जाती है लेकिन उस में श्रीचक्र या श्रीयंत्र कहीं नही होता है, वह तो मात्र एक औपचारिकता है। यह 'ट्यॅकि पूछ़' उस परिवार विशेष या वंश विशेष की महिलाएँ ही धारण करती थीं और विवाह अथवा यज्ञोपवीत के अवसर पर एकत्रित नारी समुदाय में 'ट्यॅकिपूछ़' के कारण वंश–महिलाओं को तुरन्त पहचाना जाता था। यहाँ पर 'तरंग', 'पूछ़', 'ट्यॅकि पूछ़' तथा 'ट्यॅकि ताल' का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा हैः–

1. **तरंग** : आज भी हमारे घरों में कहीं–कहीं वृद्ध महिलाएँ 'फ्यॅरन' (फिरन) पहनती हैं। 'फ्यॅरन' लम्बा, ढीला विशेष आकार का पहनावा है जो कश्मीर में महिलाएँ और पुरुष सभी पहनते हैं।

कश्मीरी पण्डित महिलाएँ फ्यॅरन पहन कर शीर्ष पर एक अत्यन्त आकर्षक 'कलपुश' (एक विशेष आकार की टोपी, जिस पर तरंगा बान्धा जाता है) और 'ज़ूज़' (जालीदार छोटे आकार की) 'पूछ़' धारण करती हैं। 'कलपुश' पर बर्फ़ जैसा सफ़ेद वस्त्रपट बान्धा जाता है। उस पर चमकदार अबरक पट एवं सोने चान्दी की सूइयाँ लगायी जाती हैं। इस विशेष शीर्षपट को 'तरंग' कहते हैं। यह एक प्रकार से कश्मीरी पण्डित महिलाओं का 'शीर्ष–अलंकार' या शिरावरण' है।

2. **पूछ़** : 'तरंगे' के ऊपर बारीक सफ़ेद मलमल का नागाकार लटकता शिरावस्त्र धारण किया जाता है जिसे 'पूछ़' कहते हैं। इस शब्द का विकास संस्कृत शब्द 'पुच्छ' (पूँछ) से हुआ है। जब 'पूछ़' पर केसर

चन्दन या सिन्दूर से श्रीचक्र बना हो तो उसे 'ट्यॅकि पूछ' कहते हैं जिसे तरंगा धारण किये महिलाएँ विवाह अथवा यज्ञोपवीत के शुभावसर पर ही धारण करती हैं।

3. **ट्यॅकि पूछ** : यह वस्तुतः शक्ति माँ के प्रति हमारी अटूट आस्था और श्रद्धा का ही परिणाम है कि महिलायें श्रीयंत्र को शीर्ष पर धारण करके हर्षोल्लास के साथ 'वनवुन' गाते हुए तथा अतिथियों का सत्कार करते हुए अपने धार्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्व को निबाहती हैं।

4. **ट्यॅकि ताल** : आजकल धोती धारण किये महिलायें जब विवाह अथवा यज्ञोपवीत के शुभावसर पर शीर्ष पर मोटे कागज़ का बना (पंचमुखी) विशेष आकृति का सूचक चिह्न धारण करती हैं तो उसे 'ट्यॅकि ताल' कहते हैं।

कश्मीरी भाषा में सिर के ऊपर के हिस्से को 'ताल' कहते हैं। इसी पर धारण किया हुआ शुभ सूचक चिह्न विशेष 'ट्यॅकि ताल' है।

कश्मीरी पण्डितों में दृढ़ विश्वास है कि जिस घर में श्रीचक्र या श्रीयंत्र का छाया चित्र नहीं होता है वह घर श्मशान (मसान) के बराबर है। यदि घर में किसी देवी–देवता का चित्र न हो, अथवा प्रतिमा न हो, गुरु महाराज का चित्र न हो या कुलदेवी का चित्र भी न हो, केवल यदि श्रीयंत्र घर में हो तो समझना चाहिये कि सभी देवी देवता घर में विद्यमान हैं। प्रातः उठकर श्रीयंत्र के दर्शन करना, नहा धोकर पंचामृत (दूध, दही, घी, मधु, मिष्ठान) से श्रीयंत्र का जलाभिषेक करना, ठाकुरद्वार में पूजा करते समय श्रीयंत्र की पुष्पार्चना करना तथा चरणामृत ग्रहण कर संतुष्ट होकर दिन का काम आरम्भ करना विघ्नहारक तथा सिद्धिदायक माना जाता है।

मैं एक और बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ–

त्रि – तीन

पुर – नगर, बस्ती, शहर, शरीर, लोक

(अ) शक्ति माँ 'त्रिपुरा' है। तंत्रमत (शास्त्र) के अनुसार किसी पीठ की सृष्टि, पालन और संहार शक्ति से युक्त अधिष्ठात्री देवी। इसे ही

अंग्रेज़ी भाषा में Presiding Chief or Superintending Force कहते हैं।

(आ) 'त्रिपुरा' तीन शक्ति तत्त्वों का समन्वित रूप है–

बल –	strength, power, force
सामर्थ्य –	competence, capacity
क्षमता –	efficiency

अतः बल, सामर्थ्य एवं क्षमता का समन्वित रूप 'त्रिपुरा' है।

(इ) 'त्रिपुरा' में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की सामर्थ्य शक्ति एक साथ देखने को मिलती है। माँ सृष्टि विकास, सृष्टि पालना और सृष्टि संहार का सामर्थ्य रखती है। वह इन तीनों शक्तियों से युक्त है अतः त्रिपुर सुन्दरी है। इसे ही तंत्र शास्त्र में 'परा' शक्ति कहते हैं। पराशक्ति अर्थात् लोकोत्तर अनुभवातीत शक्ति (Transcendental or Supernatural Power).

(ई) त्रिपुरा परंब्रह्म की इच्छा से उद्भूत होने के कारण 'इच्छा रूपा है।

परंब्रह्म से ही उस का उद्भव होता है अतः वह चिद्रूपा (चैतन्य रूप, निर्मल ज्ञान स्वरूप) भी है।

विश्व की आदि विधात्री (The Creatrix, जननी) होने के कारण इसे जननी स्वरूपा अर्थात् आदि जननी भी कहते हैं। अतः इच्छा रूपा + चिद्रूपा+जननी स्वरूपा = त्रिपुरा।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने वाली विश्व की आदि विधात्री होने के कारण इसे 'त्रिपुरा' कहा जाता है।

मंत्र स्वरूप में 'त्रिपुरा' से आशिष् पाने का साधना मंत्र है–

'ऊँ ऐं ह्रीं क्लीम् चामुण्डायै विच्चै।'

अथवा

'ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीम् चामुण्डायै नमः।'

मैं भी आदिशंकराचार्य कृत 'सौन्दर्य लहरी' के 22 वें श्लोक के आधार पर 'महात्रिपुर सुन्दरी' के सम्मुख नतमस्तक होकर करबद्ध मंगल कामना के साथ अपनी बात समाप्त कर दूँगा–

'भवानि त्वां दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणां
इति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः
तदैव त्वां तस्मै दिशसि निज सायुज्य पदवीं

मुकुन्द–ब्रह्मेन्द्र–स्फुटमकुट नीराजितपदाम्।।

हिन्दी अनुवाद :

–'हे करूणामयी माँ! मुझ दास पर दया दृष्टि कीजिए ताकि मेरा ध्यान केन्द्रस्थ हो और मेरी वाणी सफल हो जाये। इस प्रकार की इच्छा करके साधक–भक्त अपने मुख से 'भवानी त्वम्' इतना ही कह पाता है (मैं तुम सा हो जाऊँ) उसी समय उसे सायुज्य पदवी प्रदान करती हो। उस पदवी को विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि नत–मस्तक होकर आरती उतारते हैं।'

'श्री त्रिपुर सुन्दर्यै' (सौन्दर्य लहरी)
(मूलपाठ एवं अनुवाद श्री चंगू–पृ॰–23)

(30 सितम्बर, 2008 ई॰ तदुनसार आश्विन भुक्ल पक्ष प्रतिपदा प्रथम नवरात्रा)

संदर्भ साहित्यः जम्मू से प्रकाशित 'सतीसर' (सांस्कृतिक हेरिटेज) पत्रिका अप्रैल–जून 2006 अंक में प्रकाशित (अंग्रेज़ी भांषा में लिखित) लेख (पृ॰ संख्या–3–4) 'शारिका : कश्मीरी पण्डितों का आधार शैल' 'Sharika-The Foundation Rock of Kashmiri Pandits' से प्रस्तुत परिचय– पत्र लिखने के लिये सहायता ली गई है। आभार व्यक्त करना मेरा धर्म है यद्यपि हर स्थल पर सहमत होना आवश्यक नहीं।)

कश्मीर : सांस्कृतिक परिदृश्य

भाग–1

सृष्टि रचयिता ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में प्रथम नाम मरीचि ऋषि का आता है। मरीचि के पुत्र थे – कश्यप जो सृष्टिकर्ता दस प्रजापतियों में प्रधान माने जाते हैं। इन की सात पत्नियाँ थी–अदिति, दिति, विनता, कद्रू, सुरभि, दनु और सरमा। अदिति से देवता, दिति से क्रूरकर्मा दैत्य (देवशत्रु) एवं कद्रू से नाग उत्पन्न हुए।

कश्मीर कश्यप ऋषि की तपस्या स्थली एवं कर्मभूमि रही है। इसे प्राचीन काल में 'कश्यपमर' के साथ–साथ सतीसर प्रदेश भी कहते थे। घाटी के मध्य में विशाल और विस्तृत जलराशि एकत्र थी। इस जलाशय को संस्कृत भाषा में 'सर' कहते हैं और यही शब्द आज कश्मीरी भाषा में भी प्रचलित है।

महर्षि कश्यप ने अपनी संतति नागों को सतीसर प्रदेश में रहने का आदेश दिया। नाग सपरिवार यहाँ स्थायी रूप से रहने लगे और इसी विशाल जलखण्ड (सतीसर) के तटीय भूभागों में उन्होंने अपने कुटीर (आवासगृह) बना लिये।

पौराणिक कथा के अनुसार इस विशाल जलराशि में एक राक्षस जलोद्भव निवास करने लगा, जो घुप अंधेरे में 'सर' से बाहर निकल कर अपनी क्षुधा मिटाने हेतु जीव–जन्तुओं का भक्षण करता था और तृप्त होकर पुनः जल में शरण लेकर सुरक्षित रूप से जीवन का आनन्द लूट रहा था।

नाग बहुत समय तक जलोद्भव की संहार लीला सहते रहे और जब उन का नृशंस व्यवहार सहनशक्ति के बांध तोड़ने लगा तो नागों ने अपने वंश के मूल पुरुष कश्यप के पास जाकर सुरक्षा के हेतु गुहार लगाई। कश्यप सन्तानों की दुर्दशा देख कर घटनास्थल पर पहुँचे, अपनी सूझबूझ एवं व्यवहार बुद्धि से काम लेकर वराहमूल (बारामूला) के निकट कश्यप पुत्र अनन्त के द्वारा पर्वतखण्ड तुड़वा कर पानी के निकास का मार्ग बना दिया। सतीसर में एकत्रित अपार जलराशि को निकास का मार्ग मिल गया और जलोद्भव माता शारिका के प्रहार से भूमि में ही धंस कर समाप्त हो गया। माँ ने मैना (कश्मीरी–'हॉर') का रूप धारण कर जलोद्भव के ऊपर अपनी चोंच में उठाई कंकड़ी (कंकरी) फेंक दीं। वहीं कंकरी नीचे गिरते–गिरते विशाल हारी पर्वत का रूप धारण करती है और जलोद्भव की संहार लीला सदा के लिये समाप्त हो जाती है।

संस्कृत – शारी
कश्मीरी – हॉर
संस्कृत -- सारिका अथवा शारिका
कश्मीरी – शारिका

नाग अपने कुलश्रेष्ठ राजा नील के संरक्षण में जीवन यापन करने लगे। उन्हें कुछ अन्य पिछड़ी जातियों का सहयोग प्राप्त हुआ जिन्होंने नागों की सेवा में शरण ली। यद्यपि इन जातियों ने आरम्भ में नागों के साथ संघर्ष भी किया होगा लेकिन अपनी शक्तिहीनता और सामर्थ्य अभाव के कारण वे अन्त में नागों की शरण में आ गये। इन जातियों में पिशाच, यक्ष, निषाद (केवट / माझी) और कहीं–कहीं भाँड उल्लेखनीय हैं।

बहुत समय व्यतीत होने के बाद कश्मीर भूखण्ड में वैदिक आर्यों का प्रवेश हुआ। शताब्दियों से रहते चले आ रहे नागों के साथ इन का संघर्ष होना स्वाभाविक था। वे अपनी प्रभुसत्ता खोना नहीं चाहते थे और वैदिक आर्य अपनी जातीय श्रेष्ठता के मद में किसी अन्य जाति का स्वामित्व स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। राजा नील तथा अन्य

प्रजा– प्रतिनिधियों के द्वारा बात कश्यप तक पहुँची और उन्होंने इन्हें वैदिक आर्यों के साथ मिल कर रहने की सलाह दी। पारस्परिक संघर्ष कम से कम हो और विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों के लोग परस्पर सद्भावना के साथ रह कर जीवन निर्वाह करें – यही उनका उद्देश्य रहा होगा। भारतीय राजनीति और कूटनीति के इतिहास में यह शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व के हेतु किया गया प्रथम प्रयास था।

शताब्दियों तक संघर्षरत रहने के बाद नागों और वैदिक आर्यों के मध्य परस्पर कोई ऐसी सन्धि हुई होगी जिस के आधार पर वे एक साथ रहने लगे। यही उन के मूलपुरुष की इच्छा थी। समय व्यतीत होने के साथ–साथ अधिकाधिक बस्तियों का विकास होने लगा और लोग उपजाऊ भूमि की तलाश में इधर–उधर भटकने लगे। प्रत्येक समुदाय का यही प्रयास रहा होगा कि वितस्ता नदी के तटीय भू–खण्डों में रहने और बसने को जगह मिल जाये। जीवन जीने के लिये पवन और अग्नि के साथ–साथ जल का महत्त्व स्वयंसिद्ध है। जीवन जीने के लिये, सृष्टि विकास के हेतु खेतीबाड़ी के लिये एवं पशु पालन के लिये जल नितान्तावश्यक है। धीरे–धीरे यहाँ के लोगों का वितस्ता के साथ एक सम्बन्ध जुड़ गया।

वितस्ता को प्राणदायिन् शक्तिवाहिनी देवी के रूप में स्वीकृति मिल गई। लोग विशिष्ट उत्सवों पर माँ वितस्ता की पूजा करने लगे और कश्मीर में 'व्यथ त्रुवाह' (वितस्ता त्रयोदशी अर्थात भाद्र–शुक्लपक्ष त्रयोदशी) का उत्सव वितस्ता के जन्म– दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। एक लोक विश्वास के अनुसार इसी दिन माता पार्वती सर्वकल्याण हेतु अमृत स्वरूप वितस्ता के रूप में पृथ्वी पर प्रवाहित होने के लिये उतरी। भाद्र–शुक्लपक्ष चतुर्दशी का महत्त्व हमारे प्राचीन लोक जीवन में विशेष रूप से रहा है। इसे अनन्त चतुर्दशी का पर्व कहते हैं जो वासुकि दिवस के रूप में मनाया जाता है। अवश्य इस पर्व का सम्बन्ध नाग जन–जीवन के साथ रहा होगा। नागों और पिशाचों के साथ जब वैदिक आर्यों का समीकरण (assimilation) हुआ तो एक मिश्रित संस्कृति के पनपने की शुरुआत हुई और भाद्र–शुक्लपक्ष पूर्णमासी का दिन इस

मिश्रित संस्कृति के जन्म दिन के रूप में मनाया जाने लगा–ऐसा कई लोगों का विश्वास है। इस उत्सव के ऐतिहासिक साक्ष्य आज उपलब्ध नहीं हैं।

नागों, पिशाचों, यक्षों, भाँडों तथा वैदिक आर्यों के एक साथ रहने के कारण परस्पर सांस्कृतिक आदान–प्रदान होना स्वाभाविक था। यही आदान–प्रदान हम परवर्ती युग में इस्लामी संस्कृति के प्रवेश के समय देखते हैं और यही स्थिति तब उत्पन्न हुई जब यूरोपीय समुदायों ने भारत को अपना उपनिवेश बना दिया।

कश्मीरवासी नाग, पिशाच, यक्ष और वैदिक आर्यो की मिलीजुली संस्कृति की शुरुआत यहीं से होती है।

इतिहास ने पिछले सहस्रों वर्षों में कई करवट बदल लिये, परिणामस्वरूप प्राचीन परम्परा समय के थपेड़े सहते– सहते तिरस्कार पूर्ण व्यवहार के आघातों से शक्तिहीन/प्राणहीन हो गई। आज हम पुनः उसी परम्परा को जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। इतिहास का मलबा हटाना होगा, कश्मीरियत की शुरुआत को तलाशना होगा तथा सांस्कृतिक इतिहास के आदि स्त्रोतों को पुनः प्रवाहित करना होगा। आज हम उसी तलाश के पथ पर पूरी निष्ठा के साथ क़दम बढ़ा रहे हैं। हमारी आस्था अटूट है, विश्वास अटल है, संकल्प दृढ़ है। हम भूत के प्रति गम्भीर हैं ताकि वर्तमान को सुधारकर भविष्य के स्वर्णिम चित्र अपने मानस पटल पर उत्कीर्ण कर सकें।

कश्मीर : सांस्कृतिक परिदृश्य

भाग–2

हज़ारों वर्षों से विकसित कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास का गहन अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जन–मानस ने अपनी बौद्धिक एवं सर्जनात्मक शक्ति के बल पर भावी पीढ़ियों के लिये अपार ज्ञान भण्डार पीछे छोड़ा है और विभिन्न युगों में इस में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। आज अपने पूर्वजों की यही देन हमारी पैतृक सम्पत्ति अथवा संस्कृति कहलाती है।

संस्कार का शाब्दिक अर्थ है–पवित्रीकरण, पापादि का प्रक्षालन करने वाला कृत्य। इस शब्द की अन्तरात्मा में मानव– शुद्धि, सुधार, पाप–प्रक्षालन, आत्मज्ञान एवं परमार्थबोध के अर्थ निहित हैं।

संस्कारित होना एक प्रगतिशील समाज के लिये नितान्तावश्यक है। वैदिक युगीन कश्मीर की संस्कृति का मूल है– 'जियो और जीने दो'। देखा जाये तो हमारी संस्कृति विराट आर्य संस्कृति का ही एक विशिष्ट उन्नत और ख्यातिप्रद अंग है। हज़ारों–हज़ारों वर्षों से एक सारस्वत ब्राह्मण समुदाय नागों, पिशाचों, यक्षों, निषादों और भाँडों के साथ एक विशिष्ट पर्वतीय भू–खण्ड में रहता चला आया है। इन के मानस से निसृत अमृतधारा कई उपधाराओं में प्रवाहित होकर सांस्कृतिक विकास के उज्ज्वल शक्ति स्रोतों का रूप धारण करती है। यही हज़ारों–हज़ारों वर्षों से रहते चले आ रहे कश्मीरवासियों का सांस्कृतिक इतिहास कहलाता है। निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर इस सांस्कृतिक इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डाला जा सकता है:–

1. लोक जीवन से सम्बन्धित लोक साहित्य
2. अध्यात्म ज्ञानबोध – शिवोपासना
3. नीतिशास्त्र
4. सर्जनात्मक प्रतिभा–साहित्य
5. त्योहार–धार्मिक एवं सामाजिक
6. धार्मिक कृत्य एवं अनुष्ठान
7. धार्मिक विश्वास एवं विभित्र उपसाना पद्धतियों का विकास
8. भाषा–ज्ञान एवं लिपि–विकास
9. शासन व्यवस्था एवं सम्पर्क साधन
10. व्यवसाय–जीवन निर्वाह के साधन
11. सामाजिक जीवन
12. ललित कलाओं का विकास

यही उपधारायें परस्पर एक दूसरे में लय होकर महान शक्तिस्रोत का बोध कराती हैं। नवरेह, ज्येष्ठ अष्टमी, श्रावण पूर्णिमा, जन्माष्टमी, शारदा अष्टमी, शारिका जयन्ती, ज्वाला चतुर्दशी, गुरु पूर्णिमा, वितस्ता त्र्योदशी, अनन्त चतुर्दशी, दुर्गाष्टमी, साहिब सप्तमी एवं शिवरात्रि उत्सवों का सम्बन्ध हमारे धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं के साथ है। इन में सर्वप्रमुख उत्सव 'शिवरात्रि' (फाल्गुण कृष्णपक्ष त्र्योदशी) है।

हमारे सामाजिक उत्सवों में 'नवरेह', 'ज़ंगत्रय', सोन्थ, थाल बरुण, गौरी तृतीया (गोर त्रय), गाड बत, क्ष्यचरि (खिचड़ी) अमावस्या, काव पुनिम, श्रीभट्ट दिवस एवं रक्षाबन्धन उल्लेखनीय हैं।

प्रकृति सम्बन्धी लोक त्योहारों में हम 'सोंथ', 'मेला बादामवारी', वैशाखी (बैसाखी), 'वॅहरात', 'हरुद', 'वितस्तात्रयोदशी' 'शिशिर संक्रान्ति', 'नवशीन', 'जतत' एवं बसंतपंचमी हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

इस्लाम के भारत प्रवेश के साथ कई इस्लामिक लोक जीवन से जुड़े त्योहार भी इन के साथ मिल गये और आज इन त्योहारों के साथ हमारे राष्ट्रीय त्योहार भी जुड़ गये हैं।

हमारी वेशभूषा का अपना आकर्षण है। महिलायें 'फिरन' पहनती थीं। सिर पर 'तरंगा' बान्धती थीं और उस को ढकने (ढाँकने)

के लिये 'पूछ़' पहनती थीं। कमर में 'लोंगी'[1] और सिर पर दुपट्टा ओढ़ कर उनकी विशिष्ट मुद्रा सब को अपनी ओर आकर्षित करती थीं। कहते हैं कि इस वेशभूषा पर नागजाति की वेशभूषा का सब से अधिक प्रभाव रहा है। 'फिरन' पहनने वाली महिलायें कमर बाँधने के लिये एक दुपट्टा, पटका या कमरबन्ध बांधती हैं जिसे कश्मीरी में 'लूँग्य' कहते हैं। मुझे लगता है कि इस शब्द का विकास 'लुंगी' शब्द से हुआ है जिस का एक अर्थ है–कपड़े का टुकड़ा।

पुरुषों के पहनावे में भी अपना वैशिष्ट्य देखने को मिलता है। फिरन–पोछ़ और सिर पर पगड़ी, स्नानपट या पायजामा। ऋतु अनुसार ओढ़नी और तापने हेतु कांगड़ी। 'कांगड़ी' भी हमारे दैनिक जीवन में बड़ी उपयोगी रही है। फिरन के भीतर कांगड़ी और कांगड़ी में जलते लकड़ी के कोयलों की हल्की मद्धम आँच, शीतकाल में आनन्द का आभास। लोगों का विश्वास है कि शीतऋतु में भोजन के अतिरिक्त दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज़ काँगड़ी है।

पिछले हज़ारों वर्षो में कश्मीर भू–खण्ड में महान विभूतियों ने जन्म लिया, जिन्होंने अपनी प्रतिभा के आधार पर सृष्टि विकास एवं सांस्कृतिक उन्नयन में भरपूर सहयोग दे कर अपना नाम अमर कर दिया है। शैवाचार्यों की सूची में आचार्य वसुगुप्त से लेकर स्वामी लक्ष्मण जू तक सिद्ध गुरुजनों की विशाल परम्परा देखने को मिलती है जिसमें सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, स्वामी रामजी एवं महताभ काक उल्लेखनीय हैं।

इतिहासज्ञों में कल्हण पण्डित की 'राजतंरगिणी' (12 वीं शताब्दी ई०) जोनराज भट्ट, श्रीवर, प्राज्यभट्ट एवं शुक भट्ट के लिये ही नहीं अपितु आजकल के इतिहास पण्डितों के लिये भी प्रेरणास्रोत रही है। काव्य शास्त्रीय इतिहास में वामान, उद्‌भट, रुद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, क्षेमेन्द्र एवं जगद्धर भट्ट का योगदान सर्वोत्कृष्ट रहा है।

इतिहास के विभिन्न पड़ावों पर हमारी महिलाओं की भूमिका भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। जहाँ राजनीति के क्षेत्र में रानी द्यदा एवं

रानी कूटा चर्चित रही हैं, वहाँ अध्यात्म– चिन्तन में ललद्यद, रुपभवानी, रॅचद्यद एवं भवानी भाग्यवान द्यद का योगदान अभूतपूर्व रहा है। सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में हब्बाखातून के साथ–साथ अरणिमाल ने भी अपनी व्यथा–कथा गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त की है। अरणिमाल से श्रीमती बिमला रैणा तक अनेक लेखिकाओं ने इस दिशा में विविध विधाओं को अपना कर बहुमूल्य रचनाएँ हमें प्रदान की हैं।

कश्मीर के योग्य वैद्य एवं हकीमों की भी इतिहास में पर्याप्त चर्चा रही है। व्यचार नाग के मूल निवासी वैद्य श्रीभट्ट बादशाह ज़ैन–उल–आब्दीन 'बडशाह' (1420–1470 ई॰) के प्राणोद्धारक माने जाते हैं। बादशाह को रोगमुक्त करने के बाद वैद्य श्रीभट्ट अपने जाति बन्धुओं के लिये सुरक्षा के साथ देशवापसी का वरदान राजा से माँगते हैं और साथ ही कर–मुक्त करने की प्रतिज्ञा भी लेते हैं।

हमारी संस्कृति का मूल मंत्र रहा है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दःख भाग्भवेत्।।'

अथवा

'सर्व मंगल मांगल्य शिवे सर्वार्थ साधिके,
शरण्ये त्रयम्बके गौरी नारायणि नमोस्तुते।'

यही सर्वकल्याण और सामूहिक हित की बात वस्तुतः आज 'शान्तिमय सहअस्तित्व' के रूप में विकसित होकर हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य को रेखांकित करती है। हम सदा शान्ति प्रिय रहे हैं क्योंकि हम विनाश में नहीं अपितु विकास में विश्वास रखते हैं। हम किसी का जन्मसिद्ध अधिकार उस से छीनना नहीं चाहते क्योंकि हमारा विश्वास यह है कि 'हम किसी को जीवन दे नहीं सकते अतः किसी का जीवन लेने का अधिकार हमें नहीं है।' कितने महान आदर्शों को हम अपनी आस्था, संकल्प और विश्वास के शक्तिकणों से सींच रहे हैं।

कश्मीर के अद्भुत प्राकृतिक वैभव ने भी हमें 'सुन्दरम्' के प्रति आकर्षित किया है। जब प्रकृति का दृश्यमय रूप इतना मोहक एवं रहस्यमय हो सकता है तो क्यों न हम इसे अपना प्रथम पथप्रदर्शक

स्वीकार करते हुए जीवन जीने की आस्था को सुदृढ़ करें। 'हमें जीने में विश्वास है, खोने में नहीं'। हम प्रकृति की हर वस्तु में सौन्दर्य कणों को तलाशते हैं। यह जीवन के प्रति एक स्वस्थ स्वीकारात्मक भौतिक दृष्टिकोण है। हमें विनाशकारी नकारात्मक दृष्टिकोण पर कोई विश्वास नहीं। प्रकृति का प्रत्येक अंग हमें जीवन जीने की प्रेरणा देता है। 'गुलिलाला' को देखिये, गेहूँ के खेतों में मस्ती में झूमता नज़र आता है। वह जीवन के हर क्षण को जीना चाहता है यह जानते हुए भी कि शाम तक उस की काया मुरझा जायेगी। वह निश्चिन्त होकर अपने जीवन के हर पल को सार्थक बनाते हुए अपनी धवल लावण्यमय शोभा से जन–मानस को मोहित करता है।

स्पष्ट है कि प्रकृति हमारे लिये एक सशक्त प्रेरणास्रोत के रूप में सर्वत्र सक्रिय दिखाई देती है। प्रकृति का यही आभायुक्त लावण्य हर कश्मीरी के चेहरे पर खिलता हुआ नज़र आता है। अतः प्रकृति हमारे लिये संदेशवाहिका है, दूतिका है। हमें मालूम होना चाहिये कि घने गहरे कुहासे में जीवन के लिये एक सन्देश छिपा रहता है।

कश्मीरी लोकमानस का अपना महत्त्व है। हमारे लोकगीत विशेष कर 'ह्यँज़े' वनवुन गीत किसी एक लेखक या लेखिका ने नहीं लिखे हैं। युगों से लोगों ने अपनी इच्छा और आवश्यकताओं को देखते हुए इन में वृद्धि की है। यह लोक की अपनी सम्पत्ति है। इस पर किसी एक लेखक या रचनाकार का अधिकार नहीं।

कश्मीरी 'बाँड जशन (भाँडों का अभिनय प्रधान नृत्य) लोक–नाट्य का एक अद्भुत रहस्यमय प्रदर्शन है। कश्मीरी लोक–नाट्य विशेषज्ञ श्री मोतीलाल क्यमू के विचारानुसार इन अभिनय प्रधान लोक–नाट्य रचनाओं में जन मानस की वेगवान धड़कनें 'धड़–धड़' धड़क रही हैं। चाहे वह 'बाँड पॉथर' हो या 'गासॉन्य पॉथर', दॅरज़ पॉथर हो या बुहर पॉथर, 'बट पॉथर हो या वातल पॉथर', बॅकरवाल पॉथर हो या हाँज़ पॉथर' – लोक से जुड़ी रागानुभूतियाँ हास्य एवं व्यंग्य के आवरण में लोकमंच पर लोक कलाकारों के द्वारा लोकवाद्य की धनु पर लोक अभिनय एवं नृत्य के द्वारा थिरकती नज़र आती हैं। यह हमारी अमूल्य

सम्पत्ति है और इसे सुरक्षित रखना न केवल हमारा धर्म है अपितु सांस्कृतिक कर्तव्य भी है।

अत्यन्त परिष्कृत एवं परिमार्जित कश्मीर–संस्कृति का बहुविध विकास हमारे सुसम्पन्न जीवनयापन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हम संस्कारबद्ध जीवन जी रहे हैं। जन्मपूर्व संस्कार तथा जन्म लेने के बाद सस्कार, बाल जीवन के संस्कार, यज्ञोवपीत संस्कार तथा इस का धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक महत्त्व, विवाह और विवाह पर मनाये जाने वाले रस्म और रिवाज, चार आश्रम और अन्त में 'अन्तिम संस्कार' हमारे शास्त्रसम्मत अनुशासित जीवन निर्वाह के साक्ष्य हैं।

हमारे प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान के साथ श्रद्धा का तत्त्व अनिवार्य रूप से जुड़ा है, यही कारण है कि अनुष्ठान विश्वास और आस्था के आधार पर जीवन निर्वाह के विधि–विधान को शक्ति प्रदान करता है। यह न तो दिखावा है और न शक्ति प्रदर्शन, न यशप्राप्ति का लोभ है और न दूसरे को संकट ग्रस्त देखने की चाहत।

हम परमुखापेक्षी नहीं। आत्मसम्मान के साथ राष्ट्र– गौरव का ध्वज फहराते हुए हम जीवन जीना चाहते हैं। यही हमारा संकल्प है, यही हमारा स्वप्न है और यही हमारा लक्ष्य है। हम बीते हुए कल से प्रेरणा ले रहे हैं आज के लिये और आज संघर्षरत हैं आने वाले कल के लिये। हमें विश्वास है कि हमारा कल हमारी आशाओं और आकांक्षाओं के अनुकूल होगा क्योंकि हमारे सांस्कृतिक जीवन के मूल कश्मीर की माटी में बहुत गहराई में उतर चुके हैं।

जीवन–निर्वाह के इसी आशामय विश्वास के साथ हम आज बौद्धिक और शारीरिक श्रम के आधार पर संकल्पबद्ध जीवन जी रहे हैं क्योंकि हमें जीने में विश्वास है खोने में नहीं, हम चट्टानों के वक्ष को चीर कर एक दिन अवश्य मानस की वितस्ता को प्रवाह प्रदान करेंगे ताकि जलोद्भव विनाश के दलदल में धंस कर समाप्त हो जाये।

(9 अगस्त, 2006 ई., रक्षाबन्धन)

आधार ग्रन्थसूची

1. 'राजतरंगिणी' (कल्हण पण्डित) (मूलपाठ संस्कृत) आर.एस. पण्डित (अंग्रेज़ी अनुवाद) 1968 ई०
2. 'नीलमत पुराण' (मूल पाठ संस्कृत) डॉ वेद कुमारी घई (अनुवाद अंग्रेज़ी) 1968 ई०
3. 'कश्मीर पण्डित' (मूल पाठ अंग्रेज़ी) पण्डित आनन्दकौल 1924 ई०
4. 'कश्मीर–इतिहास' (मूल पाठ अंग्रेज़ी) पण्डित पृथ्वीनाथ कौल 'बामज़ई' 1962 ई०
5. 'कश्मीर का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास' (मूल पाठ अंग्रेज़ी) एस.सी.रे 1969 ई०
6. 'कश्मीर–संस्कार' (मूल पाठ अंग्रेज़ी) एस.एन.पण्डित 2006 ई०
7. 'कश्मीर के प्राचीन स्मारक' (मूल पाठ अंग्रेज़ी) राम चन्द्र काक 1933 ई०
8. 'भाँड नाट्यम्' (मूल पाठ कश्मीरी, नस्तालीक़ लिपि) मोती लाल क्यमू 2001 ई०
9. 'कोशुर शब्द–कोश' (मूल पाठ कश्मीरी, नस्तालीक़ लिपि) जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन–1979 ई०
10. 'हिन्दी कथा–कोष (पौराणिक अन्तर्कथाओं का संदर्भ ग्रन्थ' (मूल पाठ हिन्दी) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश (इलाहाबाद) 1954 ई०

कश्मीरी साहित्य में सांस्कृतिक चेतना के स्वर

(कश्मीरी रामायण 'रामावतारचरित' में सीता)

कश्मीरी साहित्यकारों को तुलसी दास से प्रेरित होने में लगभग दो सौ वर्ष लग गये। कश्मीरी भाषा में आठ रामायणों की रचना हुई है जिन में सात के नाम निम्न हैं।

1. पण्डित प्रकाशराम कुरगामी 'रामावतार चरित' (उन्नीसवी शताब्दी का पाँचवाँ दशक)
2. पण्डित शंकर कौल 'शंकर रामायण'–1870 ई॰
3. पण्डित आनन्दराम राज़दान 'आनन्द रामावतार चरित'– 1888 ई॰
4. पण्डित विष्णु कौल 'व्योस' 'विष्णुप्रताप रामायण' सन् 1909–1914 ई॰
5. पण्डित नीलकंठ शर्मा 'रामायाणि शर्मा' सन् 1919–1926 ई॰
6. पण्डित ताराचन्द 'ताराचन्द रामायण' सन् 1926–1927 ई॰
7. पण्डित अमर नाथ 'अमर' 'अमर रामायण' सन् 1950 ई॰

मैंने 'राम–काव्य' के केवल एक पात्र तक ही अपना अध्ययन सीमित रखा है और वह है – सीता।

कश्मीरी राम काव्य पण्डित प्रकाशराम कृत 'रामावतार चरित' में सीता का व्यक्तित्व सब से अधिक सशक्त एवं आकर्षक दिखाई देता है। वह भूमि का अवतार है सम्भवतः इसीलिये हर तरह का अत्यचार सहने के लिये विवश। उसे मालूम है कि रावण उस के पिता हैं और उस (रावण) का सर्वनाश नररूपी नारायण के हाथों होने जा रहा है।

लौकिक धरातल पर वह एक पतिव्रता भारतीय नारी है और हर स्थिति में अपने पति के संग रह कर पातिव्रत धर्म का पालन करते हुए जीवन–निर्वाह करना चाहती है। राम वनगमन के समय लाख समझाने

पर भी वह राम की एक नहीं सुनती और वनगमन के लिये अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त करते हुए तथा राम के प्रत्येक तर्क का समुचित उत्तर देते हुए नारीधर्म निबाहने के लिये दत्तचित्त दिखाई देती है। उस के दृढ संकल्प के सामने स्वयं रामचन्द्र भी अवाक् रह जाते हैं:–

–'कहा रामचन्द्र ने सीता से–तू ठहर यहाँ अयोध्या में
उत्तर में वह बोली – 'कलेजा मुहँ को आता है'।
कहा उसने कैसे आओगी? चरण तुम्हारे पदम सदृश
वह बोली सुन–'सुन्दरी के कर्ण में ही है सोने का मोल'
कहा उस ने तू ठहर यहाँ तू नरगिस हो उपवन की
वह बो़ल उठी–'किसी भँवरे ने मोह लिया है मुझ को'।
कहा उस ने तू ठहर यहाँ–'तेरे हाथ हें पुष्प पंखुरियों जैसे
वह बोल उठी – 'यह अखियाँ है दीवानी तुझ पर'।
कहा उस ने तू ठहर यहाँ 'तुम हो चन्द्रिका उज्ज्वल'
वह बोल उठ़ी निछावर कर दूँ प्राण तेरे चरणों पर'।

('रामावतारच़रित'–पृ॰ 32–33)

इस प्रसंग को स़मसामयिक सन्दर्भ में यदि देखा जाये तो कई प्रश्नों के उत्तर स्वतः मिल जाते हैं। काश ! सीता अपनी बहन उर्मिला के विषय में भी तनिक सोच लेती। अपने सौन्दर्य पर गर्वित होना तो नारी का स्वभाव है। नारी स्वभाव का यह गुण/दुर्गुण सीता में भी है जिस की जानकारी हमें राम के इस कथन से होती है:–

'दोयम निज सौन्दर्य का तुझे बहुत था अहंकार
कि मुझ पर है दीवाना अवतारी राम।

('रामावतारच़रित'–पृ॰ 174)

उस का आत्माभिमान कहीं आकाश की ऊँचाइयाँ छूने लगा था, आज एक ही झटके में वह स्वप्न टूट जाता है और बीभत्स यथार्थ उस के सम्मुख मुँह फैलाए खड़ा निगलने के लिए तत्पर दिखाई देता है:–

–'जाने कब किस घड़ी अहं में इतराई सीता
'मैं चतुर्दशी की चन्द्रिका हूँ रात्रि का शृंगार
न आऊँ मैं तो तारे शोक से विह्वल बिलखते हैं
सूर्य निकलता टोह लगाने स्वर्ण गिरि के शिखरों पर'

बहुत उसे अभिमान था तेजयुक्त सौन्दर्य का
'मुझ पर है दीवाना वह अवतारी राम'।

('रामावतारच़रित'–पृ॰ 165–166)

मारीच के स्वर्णमृग बन जाने पर वह अपने पति से हठपूर्वक मृग–चर्म लाने का आग्रह करती है और जब दूर से ही पुकारने की आवाज़ उसे सुनाई देती है तो लक्ष्मण को कुटिया छोड़ कर उसी दिशा में जाने के लिए विवश करती है जिस दिशा में राम स्वर्णमृग का पीछा करते हुए निकले थे। एक शंकालु प्रकृति की नारी किस सीमा तक शालीनता का उल्लंघन कर सकती है इसका अनुमान लक्ष्मण के प्रति सीता के इस कथन से लगाया जा सकता हैः–

'पहली बात कि सौतेलों का यही है तौर – तरीका
दूजा यह कि मुझे देखकर तड़प रहा है हृदय तुम्हारा
चाहरूम तुझे देखकर हृदय में चुभ जाता नश्तर
शत्रु हो या मित्र? जो साथ–साथ वन में आये'।

('रामावतारच़रित'–पृ॰ 63)

और जब रावण केश पकड़ कर घसीटता हुआ उसे ले जाता है[1] तो सीता अपने किये पर पछताते हुए विलाप करने लगती है लेकिन किसी भी स्थिति में वह रावण के सम्मुख समर्पण नहीं करती। उसी की असाधारण चारित्रिक दृढ़ता और निर्भीकता का परिचय हमें निम्नलिखित रावण–सीता संवाद से मिलता हैः–

'सीता बोली रावण से, धिक्कार तुझे'
'कर दूँगी मैं प्राणत्याग स्वामी लेंगे प्राण तेरे'
चीख उठा रावण – 'चुप, राम का भय बेमानी है अब'
उत्तर में सीता बोली 'वही लक्षण हैं मिटने के'
फुसलाया रावण ने–'खुश रहो यहाँ, राम तो है बनवासी'
उत्तर में सीता बोली 'आयेंगे अब लंका का अस्तित्व मिटाने।'

('रामावतारच़रित'–पृ॰ 95)

---

1. *'विवेकहीन बन ज्योतिहीन जब हुआ शिकार कुवृत्ति का।*
केश पकड़ कर ले भागा आकाश पथ से सीता को।'

('रामावतारच़रित'–पृ॰ 65)

अग्निपरीक्षा का प्रंसग तो नारी अभिशाप का क्रूर प्रसंग है। राम, सीता से दो–दो बार अग्निपरीक्षा मांगते हैं और अपनी बहन के बहकावे में आकर वस्तुस्थिति की सही जानकारी प्राप्त किये बिना गर्भवती पत्नी को घर से निकाल देते हैं और लक्ष्मण को यहाँ तक आदेश देते हैं कि सीता का कहीं वध कर दे। इस घटना से सीता का आत्मसम्मान आहत शेरनी के समान तड़प उठता है। लक्ष्मण आज्ञाकारी भ्रातः के रूप में वस्तुतः कापुरुष के समान इस कुकृत्य में राम का साथ देते हैं। जाने उस समय शेषनाग का फन फैलाए क्रुद्ध रूप वे किस बिल में कहाँ छोड़ आये थे। गर्भवती महिला वन में अकेली असहाय अवस्था में निर्दयी भाग्य के थपेड़े सहने के लिये विवश हो जाती है:–

'उनींदी आँखें उस की–
मुँह के बल पृथ्वी पर गिर कर तड़प रही थी
नीचे गिर कर पुष्प पंखुरी कन्तिहीन मुरझाई थी'।

('रामावतारचरित'–पृ॰ 192)

वह अत्यंत दीनहीनावस्था में पार्वती से अपनी व्यथा सुनाते हुए दया की भीख मांगती है–

–'पार्वती! कुछ उपाय करो।
घर से निष्कासित करके
कलेजे में खंजर भौंका
यही मरण था भाग्य बदा
पार्वती ! कुछ उपाय करो।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 220–222)

वाल्मीकि के आश्राम में जब उसे शरण मिल जाती है तो एकान्त में ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके वह क्रुद्ध हो उठती और पुरुष के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना उसके मानस को अधीर बना देती है। यही क्रुद्ध रूप 'प्रकाश रामायण' में सीता के चरित्र को एक नया आयाम प्रदान करता है। अन्यायी पुरुष के तथाकथित जन्मसिद्ध अधिकार को ठोकर मारते हुए सीता कहती है–

'तुम मौज मनाओ सुखपूर्वक मसनदी फ़र्श पर

और मै काँटों पर यहाँ रहूँ आकुल – व्याकुल!
क्या तुम ने नहीं कहा था। 'मैं नाजुक हूँ पुष्पांगी।'
अब नहीं देखते क्या? संकट आन पड़ा मुझ पर।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 195)

अथवा

'क्या नहीं' विचारा तुमने कितनी होगी बदनामी मेरी?
क्या नहीं कहेंगे लोग 'विपत् टूट पडी है इक अबला पर।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 197)

लव–कुश द्वारा दिखाये गए रघुकुल कुमारों के मुकुट देख कर वह फूट–फूट कर रोती है पर जब ऋषि आश्रम में राम उसे मिलना चाहते हैं तो वह आश्रम के भीतर अपनी कुटिया में घुस कर द्वार बन्द कर देती है और मिलने से स्पष्ट इनकार भी कर देती है–

'लौट आई ऋषि कुटिया में सीता जी तत्काल
जाने क्या सोचा ! और तुरन्त भेड़ दिया द्वार
जब तक नभ थल एक न होंगे
तब तक मुहँ न दिखाऊँगी मैं रामचन्द्र को।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 216)

सीता का यह निश्चय कितना स्वभाविक और विश्वसनीय लगता है। वस्तुत : रामचन्द्र अपना नैतिक अधिकार उसी समय खो देते हैं जब वह विवेकहीन बन कर सीता को घर से निकाल देते हैं। 'जब तक पृथ्वी और आकाश में परस्पर मिलन नहीं होगा तब तक मेरा रामचन्द्र से मिलन नहीं होगा।' इस कथन में सीता के मानस की समस्त पीड़ा निहित है। पुरुष नारी के प्रति किसी भी तरह का व्यवहार करने के लिये अपना अधिकार सुरक्षित समझता है। पुरुष के इस अभिमानी विश्वास पर सीता हथौड़े की चोट मार कर प्रहार करती है। रामचन्द्र जी द्वार खटखटाते रहे, बराबर विनति. करते रहे–

'कहा राम ने खोल द्वार री।
सुखपूर्वक रह अपने घर।

('रामावतारचरित'–पृ॰ 217)

सीता के लिये यह निर्णय बड़ा कठोर और पीड़ादायक है। उसे डर है कि कहीं पुनः राम के आज्ञाकारी भ्रातःश्री उसे किसी और जंगल में छोड़ न दें–

'छलक रहा था प्यार आँसू बन कर
नहीं खोला कुटिया का द्वार
कहा राम ने उचित यही है घर चलना
'यह सुन कर मैं कांप रही हूँ'। बोली सीता
कहीं वह लक्ष्मण गहन वन में छोड़ न आये
नहीं खोला कुटिया का द्वार।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 223)

वह सोचती है कि अयोध्या में राजसिहांसन पर बैठ कर वे पुनः परीक्षा देने की माँग करेंगे। बाद में ऐसा ही होता है। उसे राम के आश्वासन पर विश्वास नहीं। वस्तुतः राम के प्रति अविश्वास की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण पुरुष प्रधान समाज के प्रति अविश्वास की अभिव्यक्ति है। उसे आज भी अपने आप पर गर्व है, गर्व है इस बात पर कि वह सीता है – सधवा, पतिपरायण परन्तु साथ ही पति परित्यक्ता नारीः–

'तुम्हारे प्यार की भोली तमन्ना बुझ रही है
नहीं मैं कोई ऐसी वैसी, मैं तो सीता हूँ
परख कर चाहते हो फिर परखना!
नहीं खोला कुटिया का द्वार।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 224)

प्रोफ़ेसर ओंकार कौल के शब्दों में 'कश्मीरी प्रकाश– रामायण' में सीता की साधारण नारी सुलभ हठधर्मिता का परिचय विभिन्न स्थलों पर मिलता है। ......अयोध्या लौटने के लिए की हुई राम की विनती (विनति) एवं क्षमा–याचना को वह हठपूर्ण कठोर शब्दो में ठुकराती है। किसी भी अन्य रामायण में सीता की हठधर्मिता का ऐसा परिचय नहीं मिलता है।'

('कश्मीरी और हिन्दी रामकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन'
डॉ॰ ओंकार कौल–पृ॰ 172–173)

वस्तुतः यह स्वाभिमान प्रेरित सधवा नारी की भर्त्सनापूर्ण अस्वीकृति है, हठधर्मिता नहीं। जब राम दूसरी बार सीता से पवित्रता की साक्षी देने की बात कहते हैं तो वह इस अन्याय के सम्मुख सिर झुकाने से पृथ्वी में समा जाना कहीं अधिक श्रेयस्कर समझती है। डॉ॰ ओंकार कौल जिसे हठधर्मिता समझते हैं वह वास्तव में अन्याय के विरुद्ध नारी आक्रोश का प्रकट रूप है जिसे डॉ॰ शशिशेखर तोषखानी नारी का विद्रोही रूप मानते हैं। डॉ॰ तोषखानी ने 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है, "प्रकाश राम ने भारतीय राम काव्य में उपलब्ध सीता के चरित्र में एक नये दिक् को जोड़ दिया है। सीता का यह विद्रोही रूप अन्यत्र नहीं मिलता।" (पृष्ठ–147)

अशोक वाटिका में जब हनुमान उसे तुरन्त रामजी के पास पहुँचा देने की बात कहता है और ऐसा करने के लिए उसकी अनुमति चाहता है तो सीता इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहती हैः–

'पवन पुत्र ने जनक सुता से अनुमति चाही
आज्ञा यदि हो तो पहुँचा दूँ रामचन्द्र के पास तुरन्त।'
उत्तर में वह बोली – 'सरल हृदय हो कितने'!
सच कहती हूँ रावण मेरे पूज्य पिता हैं।
रामचन्द्र के लिये बनेगा यह उलहाना–
चुराके ले आये सीता को रावण से।

('रामावतारचरित'–पृ॰ 99)

रावण वध के पश्चात् मन्दोदरी जब सीता को राम के पास पहुँचाती है तो राम अपने मन की भड़ास निकालते हुए सीता का अपमान करते हैं। इन अपमान सूचक उक्तियों में एक अत्यंत शंकालु प्रकृति के सामान्य मानव का स्वार्थ की सीमाओं में बन्धा हुआ निर्दयी रूप ही दिखाई देता हैः–

'कहा रामचन्द्र ने सीता से उस क्षण
तुझे देख मन मेरा कितना हो जाता उदास!
प्रथम उस राक्षस ने तुझे हृदय से चाहा

मन मलिन हुआ तेरा पर तुझे नहीं कुछ चिन्ता
दोयम निज सौन्दर्य का तुझे बहुत था अहंकार
कि 'मुझ पर ही दीवाना अवतारी राम'।
सोयम एक त्रिया रही हो लंका में
सब कहते हैं सीता रही अकेली पर–घर में।

('रामावतारचरित'–पृ० 174)

अतः उसे अग्निपरीक्षा देने का आदेश देकर रामचन्द्र रघुकुल की मर्यादा के साथ नारी मर्यादा का सम्मान करते हैं अथवा अपमान, यह विचारणीय है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि सीता सोना है या पीतल। मेरा विचार यह है कि राम के अतिमानवीय व्यक्तित्व की तुलना में उस का सहज मानवीय रूप अधिक आकर्षक है और लोक जीवन के बहुत क़रीब होने के कारण हमारी आशाओं–आकांक्षाओं के साथ–साथ शंकाकुल चरित्र की दुर्बलताओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है।

प्रस्तुत रामायण में रामचन्द्र दो बार सीता से अग्निपरीक्षा की मांग करते हैं। पवित्रता की साक्षी देने का वृतांत वास्तव में नारी अपमान एवं अभिमानी पुरुष द्वारा नारी शोषण का ज्वलन्त प्रमाण है।

सम्पूर्ण लव–कुश चरित में सीता का स्वाभिमानी एवं क्रुद्ध नारी रूप शताब्दियों से पीड़ित एवं शोषित भारतीय नारी के भीतरी आक्रोश एवं विद्रोह का व्यक्त रूप है। उस के आत्म–सम्मान को जब बराबर ठेस पहुँचती है तो वह राम के अन्याय–पूर्ण आदेश की अनसुनी करने के लिये विवश हो जाती है। ज़िन्दगी का यही यथार्थ 'प्रकाशरामायण' में सीता के चरित्र को महिमामंडित बना देता है। सीता पृथ्वी में शरण लेती है। 'प्रकाश रामायण' के अनुसार वह पावन तीर्थ–स्थल कश्मीर में है। कुरिगाम काज़ीगुण्ड से लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित 'शंकर पुर' गाँव में सीता ने भूमि समाधि ग्रहण की। यहाँ के 'रामकुंड' चश्मे के पास आज भी जब यह कहा जाता है कि 'सीता! राम जी आये हैं। राम जी आये हैं।' तो चश्मे के पानी में बुलबुले उठते हैं। भले ही यह एक लोकविश्वास हो लेकिन प्रकाशराम ने इस लोकविश्वास को

रामकथा के साथ जोड़ कर जननी जन्म–भूमि को देव–भूमि का सम्मान प्रदान किया हैः–

'कहा उसने डूरू शंकर–पोरा के मध्य
भूमि में समाई और प्रकट हुई बन कर जल–स्रोत।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 233)

'प्रकाश–रामायण' में सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न रावण की पुत्री है जिसे ज्योतिष पण्डितों की भविष्यवाणी जन्म लेते ही काल सर्पिणी के समान डस लेती है। पुरुषप्रधान समाज में नारी अत्यचार का एक और ज्वलन्त उदाहरण।

'जन्म लेते ही ठगा मुझे ज्योतिषी और पण्डित ने
फिकवा दिया नदिया में पत्थर बँधवा के।'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 219)

उसे अपने ही पिता रावण और लंका के लिए अनिष्टकारी बता कर नदी में प्रवाहित किया जाता है और सौभाग्यवश नदी किनारे देव कृपासे जनक उन्हें पाकर हर्षोल्लास से खिल उठते हैं। जहाँ मन्दोदरी और स्वयं सीता इस तथ्य से परिचित हैं वहाँ मदोन्मत्त रावण अन्तिम समय तक इस यथार्थ से अपरिचित ही रहा जो विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। रावण जब सीता को उठा कर लंका की ओर प्रस्थान करता है तो निरंतर सीता उसे चेतावनी देती रहती है कि वह अपनी ही बेटी के साथ अन्याय कर रहा हैः–

'कहा रावण ने – 'क्यों रहती हो शापित – पीडित
अकुलाती वन में ?'
उत्तर में सीता बोली–कभी बेटी स्वयं मायके आती है?
रावण ने पुनः कहा–'चल, देख आकाश को छूती लंका'
सीता बोली–क्या बेटी अपने बाप के साथ भागेगी?'

('रामावतारचरित'–पृ॰ 64)

लंका पहुँचने पर देखते ही मन्दोदरी सीता को पहचान लेती है। वह मन मसोस कर रह जाती है और कामान्ध पति को पथभ्रष्ट होने से रोक नहीं पाती। उस युग में भी नारी विवशावस्था में पति आश्रित रहकर

तथा पुरुष का खिलौना बनकर ही अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाती थी।

इतना ही नहीं, सीता स्पष्ट शब्दों में हनुमान से कहती है कि रावण उसके पिता हैं:—

'सच कहती हूँ रावण मेरे पूज्य पिता हैं
जब दूषित हो जाते संस्कार तो अंजाम यही होता है
बन जाता सोना पीतल, अहंकार हो जाता चूर।'

('रामावतारचरित'—पृ॰ 99)

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि प्रकाशराम के रामायण में सीता का चरित्र सब से अधिक प्रभावशाली है और सामान्य जन की हार्दिक सहानुभूति उस के साहसी व्यक्तित्व के साथ स्वतः जुड़ जाती है।

सम्पूर्ण रामकाव्य का इतिहास तब तक अपूर्ण है जब तक प्रकाशराम कृत 'रामावतारचरित' को उस में यथोचित स्थान नहीं दिया जाता। सम्भव है प्रस्तुत रचना के गहन अध्ययन के बाद भारतीय रामकथा—काव्य के क्षेत्र में कुछ नयी ऐतिहासिक सम्भावनाओं की तलाश शुरू हो। आवश्यक नहीं कि जो कुछ वाल्मीकि एवं तुलसी दास ने लिखा है और कहा है वही अन्तिम है। इतिहास हर समय शोध के आधार पर पुनर्निरीक्षण की अपेक्षा रखता है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।

(10 जुलाई, 2004 ई॰)

मीर ग़ुलाम रसूल 'नाज़की' -मेरी नज़र में

(16 मार्च सन् 1910-16 अप्रैल 1998)

मीर ग़ुलाम रसूल नाज़की कश्मीरी भाषा के उन प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकारों में एक हैं जिन्होंने ज़िन्दगी के गहन यथार्थ को चिन्तन की सान पर चढ़ा कर चुटीले व्यंग्य के माध्यम से काव्य भाषा में व्यक्त करने का प्रयास किया है।

मुंशी फाज़िल, मुंशी आलिम तथा अदीब फाज़िल की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने बी॰ए॰ की परीक्षा पास की, लेकिन मात्र परीक्षाएँ पास करना ही उन का उद्देश्य नहीं रहा है। ज़िन्दगी के स्कूल में एक अनुसंधित्सु के समान परत-दर-परत जीवन सत्यों को समझने, जानने और व्यावहारिक रूप में अपनाने का प्रयास किया है। यह उन की पूरी ज़िन्दगी की साधना रही है और इस कठोर साधना पथ पर चल कर वे एक के बाद एक अद्भुत मौक्तिक कण ढूँढने में सफल हुए हैं।

अरबी, फ़ारसी और उर्दू भाषाओं पर उन्हें गहरी नज़र थी पर विश्वप्रसिद्ध संस्कृत भाषा और शारदा लिपि की सम्यक् जानकारी नहीं थी। काश! उन्हें कश्मीर की इस सांस्कृतिक सम्पदा का बोध होता तो आज हम उन के रचना संसार में नई सम्भावनाओं को तलाशने में व्यस्त रहते। श्रीनगर में रेडियो स्टेशन की स्थापना के बाद सन् 1948 ई॰ में उन की नियुक्ति एक अच्छे पद पर स्टेशन में हुई और सेवानिवृत्त होने तक प्रसारण के विविध कार्यक्रमों के साथ जुड़े रहे।

'नाज़की' साहब ने जीवन के स्कूल में बहुत कुछ देखा और सहा है। यही कारण है कि उन की प्रत्येक चतुष्पदी (मेरा अभिप्राय रुबाई से है) में अनुभूति की ताज़गी के साथ-साथ चिन्तन और विचार

की गरिमा भी पाई जाती है। उन्हें हम किसी विशेष आन्दोलन के साथ बान्ध नहीं सकते न उन्होंने परम्परा का अन्धानुकरण किया और न ही आँखें मूँद कर नव्य काव्य आन्दोलनों के प्रवाह में प्रवाहित हुए हैं। उन के सरल और अकलुषित जीवन में उच्च चिन्तन का वास था। जीवन के प्रति उन का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ एवं तर्काश्रित था।

'नाज़की' साहब के कृतित्व को प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। उर्दू भाषा में लिखी 'नाज़की' की रचनाएँ और कश्मीरी भाषा में लिखी रचनाएँ। 'नाज़की' गद्य और पद्य में समान रूप से लिखते रहे। 'रूह–ए–ग़नी' नाज़की की एक उल्लेखनीय सम्पादित रचना है जिस में ग़नी कश्मीरी के काव्य के कुछ अंशों का सम्पादित रूप उर्दू अनुवाद सहित प्रस्तुत किया गया है। कवि अब्दुल अहद नादिम की चुनी हुई रचनाओं का उर्दू अनुवाद सहित सम्पादन कार्य आपने सफलतापूर्वक पूरा किया और यह रचना जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा सन् 1959 ई॰ में प्रकाशित हुई।

'नाज़की' साहब आरम्भ में कश्मीरी भाषा में नहीं लिखते थे। रेडियो में आने के बाद वे इस ओर प्रवृत्त हुए और कश्मीरी में ग़ज़ल, रुबाई और कत्आत लिखने लगे। काव्याभिव्यक्ति की इन प्रमुख शैलियों को अपनाते हुए भी उन्होंने मुक्तक काव्य के क्षेत्र में रुबाई की ओर अधिक ध्यान दिया और कश्मीरी साहित्य में इस काव्य विधा को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान की। 'देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर' इस उद्देश्य से उन्होंने रुबाई को अपनी अभिव्यक्ति का मुख्य साधन बनाया।

सन् 1964 ई॰ में उन्होंने कश्मीरी मे 'नमरुदनाम' प्रकाशित किया, जिस में कुल मिलाकर 200 रुबाइयाँ–कत्आत संगृहीत हैं। विषय–विस्तार की दृष्टि से इन्हें कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इन रुबाइयों में कहीं उन के सरल और स्वच्छन्द हृदयोद्‌गार अभिव्यक्त हुए हैं तो कहीं युगीन जीवन–सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक– अपनी समस्त विकृतियों के साथ प्रतिबिम्बित हो उठा है। कहीं इन में विचारों की गरिमा है तो कहीं ईश्वरवन्दना में दैन्यभाव एवं पूर्णसमर्पण का महात्म्य अंकित है। कहीं वैयक्तिक जीवन की गहन

चिन्तन प्रधान अनुभूति मुखर हो उठी है तो कहीं एक सरस, मनोरम लौकिक प्रेमानुभूति प्रणयाकुल हृदय की तारों को झंकृत कर देती हैं। कहीं तीखा, चुभता व्यंग्य नश्तर के समान हृदय को चीरता हुआ पार चला जाता है तो कहीं ज़िन्दगी के बीभत्स यथार्थ का एहसास जनमानस में गहराता है। 'नाज़की' साहब का हास्य व्यंग्य अप्रत्यक्ष रूप से मुक्तक (रुबाई) के सामूहिक प्रभाव को गहराने में भी सहायक सिद्ध होता है।

इश्क़े हक़ीक़ी अथवा इश्क़े इलाही से प्रेरित होकर 'नाज़की' साहब ने कई रुबाइयाँ लिखी हैं जिन में अपने इष्ट के प्रति अर्चनापुष्प समर्पित करते हुए कवि अलौकिक प्रेमानुभूति में अपनी सुधबुध खोकर उस परमसत्ता के अस्तित्व में लय होने का प्रयास करते हैं। अद्वैतभाव से प्रेरित कवि एकाग्रचित्त होकर तथा अपनी समस्त शक्तियों को समेट कर उस विराट सत्ता के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है। इन रुबाइयों में भक्त हृदय की निश्छल भावना पूरे आत्मविश्वास के साथ अभिव्यक्त हुई है। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1 *'जुदॉई हांदि शबन राट तूल यिखना*
गमव दितिहम दिलस मंज़ मूल यिखना
ग़मुक गटज़ाल चल्यम चश्मन यियम गाश
ॲछर वालव छु कारमुत ज़ूल यिखना।'

हिन्दी अनुवाद :

'वियोग रात्रि बढ़ती गई, काश! आजाते
घर कर गई चिन्ताएँ हृदय में, काश! आजाते
ग़म का घटाटोप मिटजायेगा, आँखों को नवज्योति मिलेगी
बरौनियों ने दीप माला सजाई, काश! आजाते।'

2 *'ब्व सॅन्य पोशन च्य करहै माल यिखना*
ब्व बरहय शोक़की मस प्याल यिखना
ॲछन हुन्द गाश वन्दहय लाल यिखना
मदीनकि टाठि साथा साल यिखना।'

हिन्दी अनुवाद :

'सँज़' पुष्पों की मालाएँ गूँथूँगी स्वागत हेतु काश! आजाते
चाहत के मधु–कलस भरूँगी, काश! आजाते
निछावर करती नेत्र ज्योति, प्रिय! आजाते
मदीने के लाल! कभी आतिथ्य स्वीकार करते ।'

(सँज़ / सॅन्य–कश्मीरी–सँज़पोश–
पीले रंग का एक पुष्प विशेष)

मृत्यु जीवन का एक शाश्वत सत्य है–इस की उपेक्षा नहीं की जा सकती, लेकिन इसका रहस्य क्या है? कवि इसे जानने हेतु ज्ञान और चिन्तन के पथ पर अग्रसर होकर अनुभूति को तर्क की कसौटी पर कसता (परखता) है। बन्धु– बान्धव, सखा–साथी, परिवार–कुटुम्ब सब कुछ अपना होते हुए भी कुछ भी अपना नहीं है–रहेगी शेष केवल एक कटु–मधुर स्मृति। अतः आवश्यकता है निरन्तर साधना की ताकि मृत्यु और जीवन की क्षणभंगुरता का एहसास हमें निष्क्रिय न बना दें। जीवन की क्षण भंगुरता और मृत्युभय का एहसास इन रुबाइयों में गहराने लगता है:–

1 *'मकानुक बाम रास्तुई पोर दुनिया*
दोह्य आदरुय लबन हुन्द बोर दुनिया
हतस वॅरियस ति हरगाह ज़िन्द रोज़ख
पतव लाकन छु वाँगज वोर दुनिया।'

हिन्दी अनुवाद :

'मकान का, बिना बाम [1] मंज़िल, है यह दुनिया
नित दीवारों का गीला पलस्तर, है यह दुनिया
यदि जीवित रह सकोगे सौ साल तक
पर अन्त में बिराना ही तो, है यह दुनिया।'

2 *'च छुख दाना च छुख बीना च छुख गाश*
सॅनिस वागनिस प्यवान चोनुई छु परतव
यह गव बरहक त पाज़ लेकिन कथा बोज़
लसुन ज़ानक मरुन ज़ानक न क्या गव।'

---

1. बाम (फ़ारसी)–छत, बाम (कश्मीरी)–छत की कैंची (छत का आधार)

हिन्दी अनुवाद :

दाना हो तुम बीना हो तुम और हो प्रकाश
गहरे–उथले पर पड़ जाती है तेरी छवि
यह सत्य और उचित है लेकिन सुन लीजिये इक बात
जीवन जीना जानते हो पर मृत्यु बोध से हो अपरिचित।'

व्यंग्यकार नाज़की ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया हैं। यहाँ उन की काव्य प्रतिभा जीवन को बहुत गहराई से देखने– समझने और अनुभव करने की दिशा में सतत् प्रयत्नशील दिखाई देती है। आधुनिक कश्मीरी व्यग्य लेखकों में नाज़की ने जीवन का मुशाहदः बहुत निकट से, ईमानदारी और सहजता के साथ किया है। जहाँ एक ओर विषम परिस्थिति के विरुद्ध विद्रोह करने का सामर्थ्य उन में है वहाँ दूसरी ओर विषपायी बन कर बीभत्स यथार्थ को हास्य के पुट में नश्तर की सूक्ष्मधार का रूप प्रदान करने की प्रतिभा भी है। आज लोग अपनी व्यवहार कुशलता पर इठलाते हैं और आज की व्यवहार कुशलता इसी में है कि दूसरे के रक्त से अपने मस्तक पर विजय–तिलक लगाओ, इंसानियत रुसवा हो गई है। यह तथ्य न केवल पारिवारिक जीवन व्यवहार के स्तर पर अपितु राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सार्थक दिखाई देता है। कृत्रिम हावभाव आज का जीवन–सत्य बन गया है। दिखावे की दुनिया का एक रंग देखिये–

'अगर स्यस छव बुथिस प्यठ तथ वनिव खाल
मॅ ऑसिन लचक सेतारस वलिव शाल,
बुजर थॉविव खटिथ मस्तस दियिव रंग
वरी गव वाँसि कम यारन करिव साल।'

हिन्दी अनुवाद :

'यदि मुँह पर फुड़िया है तो उसे तिल कह देना
लचका नहीं सितार में तो शाल लपेटना
बालों को रंग कर ठग लेना बुढ़ापे को
कम हो गया एक वर्ष आयु में, दावतें उड़ाओ।'

भौतिक जीवन को अद्भुत अलौकिक से भी महत्त्वपूर्ण समझने

वाले व्यवहार कुशल धनलोलुप मनुष्य की राक्षसी वृत्तियों पर चोट करते हुए कवि लिखता है :–

'खादा त्रॉविथ नमुन यॅम्य लोग द्यारन
दिल ऑज़ॉरी करन बायन त यारन
करान छ़ल गव स्यॅद्यन सादन बिचारन
ॲछन तस गाश नियुव परवरदिगारन।'

हिन्दी अनुवाद :

'ईश त्याग कर धन सम्पत्ति का पूजन जिसने किया आरम्भ
बन्धु और मीत जनों का हृदय दुखाया
सीधे सादे सरल जनों को लगा ठगने
उसी की नेत्र ज्योति छीन ली परमपिता ने।'

तथाकथित धर्मगुरुओं की छीनाझपटी एवं छद्म व्यवहार देखकर 'नाज़की' क्रुद्ध हो उठते हैं। आज के इस व्यापारिक युग में धर्म का भी व्यापार हो रहा है और धर्म के ठेकेदार निज स्वार्थसिद्धि के हेतु दिल की ख़ानक़ाहों को वीरान बना कर पूजा स्थलों को भव्य रूप प्रदान करते हुए संगेमरमरी सज्जा से सज्जित कर देते हैं। जब इंसान के ईमान का व्यापार हो सकता है तो धर्म के बिकाऊ होने में किस बात का आश्चर्य–

'वुछिथ साहिब दिलन सपदान छु अफ़सूस
मलन हुन्द लूठ पीरन हुन्द थपलहूस
दिलन हन्दि ख़ानक़ाह वॉरान गॉमत्य
मशीदन संगेमरमर झाड़ फानूस।'

हिन्दी अनुवाद :

'परहेज़गारों को देख कर होता बड़ा अफ़सोस
मुल्लाओं की लूट और पीरों की छीना झपटी
उजड़ गई हैं दिल की ख़ानक़ाहें
मस्जिदों में लग रहे हैं संगेमर्मर और झाड़ फ़ानूस।'

राजनीतिज्ञों के दाँवपेंच देखकर उन का व्यंग्य और भी तीक्ष्ण रूप धारण करता है। वस्तुतः वे अपने युग के प्रति सचेत थे। स्वतंत्रता पूर्व हम ने अपने भविष्य के जो सुनहले सपने सँजोये थे, स्वतंत्रता प्राप्ति

के पश्चात् सपने, सपने ही रह गये फलतः आशा–निराशा में बदल गई। कवि आधुनिक युगीन अवसरवादी राजनीति पर कठोर व्यंग्य करते हुए वस्तुतः इस के खोखलेपन की हक़ीक़त को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखते हैं। राजनीति के सही रूप को जानने हेतु कूटनीति के दाँवपेंच समझना नितान्तावश्यक है। बड़े–बड़े अनुभवी खिलाड़ी ही यह खेल खेल सकते हैं। आज के राजनेताओं के लिये धर्म, न्याय, ईश्वरीय कोप, नैतिकता, तर्क, सत्य इत्यादि आदर्शसूचक नैतिक मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं। उस की कथनी और करनी में कोई साम्य नहीं है। वह देवता का रूप धारण कर असहाय निश्चेष्ट जनता को ठग लेता है और अत्यन्त शान्त और सुरम्य वातावरण में विनाश की दानवी लीला रचता है। अल्लाह बचाये हर आदमी को आज के 'राजनेता' से। इस दृष्टि से 'नाज़की' साहब की यह रुबाई देखने योग्य है–

'ब्व छुस ऍला सियासतकार छुसना?
गुण्डन हुन्द बब शरीफ आज़ार छुसना?
ब्व छुस गोस्यन दपान तोह्य गॅव निज़ॉमी
ब्व छुस लोस्यन गंडान दस्तार छुसना?'

हिन्दी अनुवाद :

'मैं हूँ उत्तम राजनीतिज्ञ, क्या नहीं हूँ?
गुण्ड़ों का बाप शरीफों का दुखदायक?
ग्वालों से कहता हूँ कि प्रबन्ध व्यवस्थापक हो तुम?
नहीं बान्धता हूँ क्या मैं 'छड़ी पर दस्तार [1]?'

'नाज़की' साहब ने अपनी रुबाइयो में लौकिक प्रेमानुभूतियों का भी अत्यतं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। शृंगार रससिक्त सौन्दर्य चित्र उभारने में 'नाज़की' साहब निस्सन्देह बेजोड़ हैं। आकार की संक्षिप्तता के कारण इन्हें 'माइक्रोचित्र' कहना अनुचित न होगा। प्रत्येक चित्र अपने आप में पूर्ण और प्रभविष्णु है। कुशल चित्रकार की तूलिका के धीमे आघातों से कवि ने अत्यन्त आकर्षक एवं जीवन्त शब्द–चित्रों की

1. 'लोरि दस्तार'– कश्मीरी भाषा का प्रसिद्ध मुहावरा (छड़ी पर पगड़ी बान्धना) अर्थात् इशारों पर नाचने वाले जी–हुज़ूर को सिंहासन पर बिठाना।

सृष्टि की है। तड़पती विरहिणी का इस स्थिति से गुज़रना कितना कष्टदायक हो सकता है इस का अनुमान वही लगा सकते हैं जिन्होंने किसी की याद में तड़प–तड़प कर बिलखते हुए रोया हो। पाषाणहृदयी प्रियतम के सम्मुख विरहिणी की बेबसी और विवशता का कोई मूल्य नहीं। यहीं कारण है कि सुलगती चिनगारी दहकता अंगारा बन कर विरहिणी का जीना दूभर कर देती है–

'दोहस रुदुम यती कोरनम मज़ाखा
युथई दोह लूस नीरिथ गोम क्या गोम
दपान पत ओस आमुत पॅतिमि पॉहस्य
शोंगिथ वुछिनस त फीरिथि गोम क्या गोम।'

हिन्दी अनुवाद :

'दिन भर रहे यहीं और मुझ से करते रहे मज़ाक़ (दिल्लगी)
दिन डूब गया ज्योंही, अफ़सोस! निकल गये
कहते हैं कि रात के पिछले पहर में आये थे
सोते देखा मुझे, अफ़सोस! लौट चले।'

स्पष्ट है कि 'नाज़की' साहब सौन्दर्य के उपासक रहे हैं और रूपलावण्य ने उन्हें मुखर और उन की लेखनी को सक्रिय बना दिया है।

'नाज़की' के काव्य सृजन में प्रकृति का विशिष्ट योगदान रहा है। कहीं प्रकृति पृष्ठभूमि में और कहीं उद्दीपन रूप में रस छलकाती दिखाई देती है। कश्मीर के अद्‌भुत प्राकृतिक दृश्य बिम्ब–प्रतिबिम्बों के साथ उन की रुबाइयों में साकार हो उठे हैं। 'नाज़की' प्रकृति की नज़ाकत से बख़ूबी परिचित थे, यही कारण है कि अप्सरा सदृश सुन्दरी जब वन विचरण के हेतु अपने डग भरती है तो:–

'स्व सान्दरमाल फेरान ऑस आरन
कनन गव विगनि वनवुन सब्ज़ज़ारन
च़ंलान थपि थारि बुथ छाल आबशारन
दपान तॉलि टारि नज़रा कॉर बहारन।'

हिन्दी अनुवाद :

'सुन्दरी घूम रही थी पर्वतोद्भूत जलधारा के पास
सब्ज़ःज़ारों में गूँज उठा अप्सराओं का गायन
भागमभाग में मुँह धोयो आबशारों ने
कहते झुकी निगाहों से कुसुमाकर ने निहार लिया।'

'नाज़की' साहब की रुबाइयों में लोक जीवन के मनमोहक रंग भी देखने को मिलते हैं। उन का बाल्यकाल प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में व्यतीत हुआ है। प्रकृति के नाना रूप और रंग उन्होंने निकट से देखे और लौकिक सौन्दर्य से भरपूर प्राकृतिक छटा उन्हें निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करती रही है। ऋतु–विशेष का अद्भुत सौन्दर्य लोक–सौन्दर्य के साथ एकाकार होकर जीव और जगत के पारस्परिक सम्बन्ध को व्यक्त करने में अथवा समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। नव–वसन्त के आगमन की सूचना प्रकृति अपना रूप परिधान बदल कर दे रही है। बहती नदियों का कलकल निनाद और फलदार वृक्षों पर खिला यौवन, प्रियतम की मधुर स्मृति और मिलन की उत्कंठा और इस पर बादामवारी का मेला–यही तो लोक रंग की अपनी ख़ूबी हैः–

'कोठिश च़ाल शीन बालन च़ायि नठ हिश
ज़मिस्तानस गॅमच़ ज़ुल्फन छि ज़ठ हिश
च़ॅनन्य पोशव छु राटमुत यार सुन्द रंग
तवय लॉजमच़ छि बादमवॉर त्रॅठ हिश।'

हिन्दी अनुवादः

'कठकोश [1] हुआ समाप्त बर्फ़ के पहाड़ लगे घबराने
शीतकाल के अलकों में उलझाव आ गया
आड़ू के फूलों ने ग्रहण किया मनमीत का रंग
इसी लिये बादामवारी [2] में ग़ज़ब की रौनक छाई है।'

---

1. 'कठकोश' – कोठिश (कश्मीरी) शीत काल में बहुत अधिक सर्दी के कारण जब तरलपदार्थ जम जाते हैं और शीत लहर से वातावरण यखबस्तः (ठंड से जम जाना) हो जाता है उसे कश्मीरी में 'कठकोश' कहते हैं। अनुमान किया जाता है कि इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत' कर्कश' शब्द से हुई है।
2. 'बादामवारी'–श्रीनगर में बसन्त ऋतु के आगमन और बादाम के बाग़ों में फूल खिलने पर लगने वाला एक लोकमेला।

'नाज़की' साहब का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उन्हें कश्मीर के प्राचीन इतिहास, विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों, सूफ़ी मत और ऋषि सम्प्रदाय के साथ–साथ वर्तमान युग तक की समस्त साहित्यिक गतिविधियों की सम्यक् जानकारी थी। धर्म एवं दर्शन का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था। उनके व्यक्तित्व निर्माण में उनकी अध्ययनशील रुचि एवं ज्ञानार्जन की बलवती इच्छा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने जीवन के स्कूल में बहुत कुछ पढ़ा है, बहुत कुछ अनुभव किया है, बहुत कुछ देखा और सहा है। यही कारण है कि उन की रुबाइयों में अनुभूति की ताज़गी के साथ–साथ चिन्तन और विचार की गरिमा भी पाई जाती है। उन के सरल और अकलुषित जीवन में उच्च चिन्तन का वास था। वे इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि ग़ज़ल द्वारा हुस्नोइश्क़ की दास्ताँ कहते, सुनते–सुनाते और दोहराते बहुत समय व्यतीत हुआ है। अब कुछ नये अन्दाज़ में ज़िन्दगी को नये सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में नवीन विश्वासों और मान्यताओं के साथ समझने की आवश्यकता है। उन्होंने रुबाई और कत्आत को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बनाया। यही वह समय है जब स्वर्गीय दीनानाथ 'नादिम' ने 'चतुर्दशपदी' (sonnet) और 'आज़ाद नज़्म' को कश्मीरी भाषा में अभिव्यक्ति हेतु अपनाया। 'नाज़की' साहब को परम्परागत काव्य प्रयोगों के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। ये काव्य प्रयोग काफ़ी घिसे पिटे थे और आवश्यकता इस बात की थी कि बदलते सन्दर्भों के अनुरूप अभिव्यक्ति में भी नये प्रयोग किये जायें। बदलाव के इस दौर में अन्तरबाह्य स्वरूप में परिवर्तन अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में दो मुक्तक (रुबाई नहीं, कत्अः) द्रष्टव्य हैः–

1. *'रनेमच़ ज़ॅट गॅमच़ छम प्राणवारन*
वनय क्या दामनस तल नाल वोतुम,
सच़ा गाछ़ युस म्यॅ सुविहे नाव पोशाका
पॅलव बदलावनस यच़ काल वोतुम।'

हिन्दी अनुवादः

'तार–तार हो गये वस्त्र माँग के लाये जो

क्या कहूँ गिरीबान[1] पहुँच गया दामन तक
दर्ज़ी चाहिये, जो सी लेता मेरे हेतु नई पोशाक
बहुत समय हुआ तब से जब कपड़े बदले थे।

2. *'वुछ्ॅक पानय ़च दानवय रूद्‌य ब्योन–ब्योन*
अगर ज़ाँह कॉल्य त्रावख आब तीलस,
छुकय दाना त सन पानय लॅबक पय
बन्या यारज़ कमीनस तय असीलस!'

हिन्दी अनुवादः

'स्वयं देखोगे दोनों अलग–अलग रहते हैं
यदि कभी तेल में पानी़ डालोगे
बुद्धिमान हो, तनिक विचार तथ्य से परिचित हो जाओगे
कभी कमज़ात और सज्जन एक दूसरे के मित्र हो सकते हैं!'

'नाज़की' की रुबाइयों में प्रयोगों की विविधता है। उन के काव्य–प्रयोग पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ अनुभूति की गहराई, विचार और चिन्तन की गरिमा तथा उर्वर कल्पना का मधु– मिश्रण है। आधुनिक कश्मीरी काव्य के इतिहास में रुबाई को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान करने में 'नाज़की' साहब के योगदान का ऐतिहासिक महत्त्व है। यह सत्य है कि अरबी, फ़ारसी और उर्दू का गहरा प्रभाव उन की भाषा और अभिव्यक्ति में देखने को मिलता है। संतुलन बनाये रखने हेतु यद्यपि वे सचेत थे तथपि कहीं–कहीं वे निर्वाह नहीं कर सके हैं।

कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि काश! 'नाज़की' साहब को संस्कृत भाषा की सम्यक् जानकारी होती तो रुबाइयों की अभिव्यक्ति का रंग कुछ और ही होता। शताब्दियों तक विदेशी भाषाओं के चंगुल में फंसकर कश्मीरी भाषा चिरकाल तक बोली ही रही, भाषा नहीं बन पायी। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है जिस को नकारा नहीं जा सकता। 'नाज़की' साहब को ज़िन्दगी से प्यार है लेकिन साथ ही ज़िन्दगी के रहस्यों को जानने–समझने और बयान करने की उत्कंठा भी है। इस ज़िन्दगी के आगे भी कुछ और अद्‌भुत एवं रहस्यमय है जिसे जानना

1. गिरीबान (फ़ारसी)–कुर्ते कमीज़ आदि का गला।

ही सही अर्थों में ज़िन्दगी को पहचाननना है।

भीतर का शाइर जब बरजस्तः गोई में बाहर फूट पड़ता तो ज़िन्दगी अपने कटु–मधुर विकृत–सुकृत रूप में गतिशील हो उठती है। शाइर बाह्यप्रकृति के साथ अन्तःप्रकृति का सामंजस्य स्थापित करता है और प्रत्येकक्षण सौन्दर्यान्वेषी बन कर जीना चाहता है। उन का दृष्टिकोण स्वीकारात्मक/ सकारात्मक था नकारात्मक नहीं। उन्हें अकृत्रिम जीवन से बेहद लगाव था और औपचारिकता–पूर्ण कृत्रिम व्यवहार से नफ़रत। वे ज़िन्दगी जीना चाहते थे, संकटों से जूझते हुए और आन्धी तूफानों का सामना करते हुए वे लक्ष्य की ओर बढ़ते रहे। वे जानते थे कि रोना–हँसना, उठना–गिरना, जय–पराजय, सफलता–विफलता, हर्ष–आक्रोश, मित्रता–शत्रुता, स्वार्थ– परमार्थ, अन्धकार–प्रकाश, परस्पर विरोधी तत्त्वों के संघर्ष का नाम ही जीवन है। यह जानते हुए भी कि जीवन क्षणिक है अस्थायी और नाशवान है, द्रुत परिवर्तनशील है वे क्षण– स्थायी जीवन के हर क्षण को मूल्यवान समझकर उसे सार्थक बनाने हेतु प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। लिखते हैं:–

'मकानुक बाम रास्तुई पोर दुनिया
दोह्य ऑदरुय लबन हुन्द बोर दुनिया,
हतस वॅरियस ति हरगाह ज़िन्द रोज़ख
पतवलाकन छु वाँगज वोर दुनिया।'

इस रुबाई को पढ़कर यह निष्कर्ष निकालना ग़लत है कि 'नाज़की' जीवन की क्षण भंगुरता से निराश थे। बात वास्तव में कुछ और है। वे जीवन की क्षणभंगुरता से निराश नहीं; ज़िन्दगी की एक हक़ीक़त से आश्ना (परिचित) थे। शेष रह जाती हैं मधुर स्मृतियाँ। रचनाकार अपने कृतित्व के आधार पर अमर हो जाते हैं। मृत्यु उन के शरीर को निश्चेष्ट कर देता है परन्तु उन की लेखनी उसे अमरत्व का वरदान प्रदान करती है।

'नाज़की' साहब ने जीवन की हर स्थिति पर विचार किया है। नैतिक पतन, भ्रष्टाचार, छलकपटमय शिष्टाचार, सामाजिक पतन, ईश्वरीय सत्ता में अविश्वास, बदलते रिश्ते और टूटती आस्थायें, घटनायें और

दुर्घटनायें उसे सोचने के लिये उत्तेजित करती हैं। शाइर अंतरंग मीत की तलाश में है जिसके सम्मुख वह अपना हृदय खोल कर रख देना चाहता है। समकालीन जीवन की बेराहरवी (कुचाली, गुमराही कुमार्गगमन) ने उन्हें मायूस कर दिया था।

कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कि जीवन जीना मात्र एक औपचारिकता निबाहना है। युगीन जीवन के कृत्रिम हावभाव पर खिन्न कवि भीतरी आक्रोश को व्यक्त करते हुए वस्तुतः मानव समाज को गहरी नींद से जगाने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं:–

छु अ‍ॅज़किस फलसफ़स अलिमस होखुय ताव
न छस गरमी न छस सूज़िश न छुस ताव ,
शकुक कठकोश गुमानन हंज़ शिशरगाँठ
क़्यासुक शीन तख़मीनुक तुरुन वाव।'

हिन्दी अनुवादः

'आज दर्शन और ज्ञान में चिन्तन की उष्णता नहीं है
न इस में गरमी है, न विह्वलता और न तपन
सन्देह के 'कठकोश' निराधार विश्वासों की हिमवर्तिका
अनुमानों का हिम और अटकलों की ठंडी बयार।'

अत्यंत संघर्षमय जीवन जीते हुए 'नाज़की' साहब ने पारिवारिक उत्तरदायित्व को बख़ूबी निबाहाया। अनुशासनबद्ध जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए इन्होंने अपनी भावी संतति को लक्ष्यप्रप्ति हेतु कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये उत्साहित किया। इन के पुत्र रत्नों ने उच्चशिक्षा प्राप्त कर विशिष्ट कार्यक्षेत्रों में प्रशंसनीय भूमिका निबाही है। ज्येष्ठ पुत्र श्री रियाज़–उल–इस्लाम निदेशक उद्यानविज्ञान पद से सेवानिवृत्त हुए। सर्जनात्मक साहित्य एवं प्रसारण माध्यमों के क्षेत्र में फ़ारूक़ 'नाज़की' साहब घाटी में ही नहीं अपितु सारे देश में अपनी योग्यता के कारण चर्चित रहे हैं। इन की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं–'नार ह्यतुन कंज़ल वनस' (पुरस्कृत) 'आख़िरी शब से पहले' एवं 'लफ़्ज़ लफ़्ज़ नवा'। विधिशास्त्र के क्षेत्र में उच्च न्यायालय न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री बिलाल 'नाज़की साहब', शिक्षा अनुसन्धान और शैक्षणिक प्रशासन के क्षेत्र में अयाज़

रसूल नाज़की साहब, शिक्षाविद् डॉ॰ इकबाल नाज़की और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र मे डॉ॰ तारिक नाज़की आज कल घाटी में पर्याप्त चर्चित हैं। इस के अतिरिक्त 'नाज़की' साहब के एक और पुत्र श्री वक़ार–उल–मलिक नाज़की जम्मू कश्मीर बैंक में प्रमुख प्रबन्धक के पद पर कार्यरत हैं। 'नाज़की' साहब के प्रतिभा सम्पन्न इन बुद्धिजीवी संतानों का अपने–अपने क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान रहा है।

जम्मू कश्मीर अकादमी आफ आर्ट कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ ने 'नाज़की' साहब की सर्जनात्मक प्रतिभा को महत्त्व देते हुए सन् 1974 ई॰ में एक विशेष जनसभा में उन्हें वरिष्ठ सर्जनात्मक साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया।

'नाज़की' साहब का देहान्त 16 अप्रैल सन् 1998 ई॰ के दिन 88 वर्ष की आयु में श्रीनगर में हुआ। देहावसान का कारण कोई विशेष रोग नहीं था। केवल वृद्धावस्था में यात्रापथ पर शरीर ने साथ छोड़ दिया।

"पंछी उड़ चला पिया के घर
भर ली उड़ान और अपनों ने आह
शेष रह गई खटीमीठी यादें,
टप–टप टपके आँसूं
बह चली व्यथा,
अश्रुसिक्त स्मृतियाँ
पुष्प माला में
गूँथ रहा हूँ
पिरो रहा हूँ
बीन रहा हूँ।"

(21 अक्तूबर, 2007 ई॰)

'ललद्यद : मेरी दृष्टि में' - बिमला रैणा

(एक लम्बी यात्रा के विभिन्न पड़ाव, पाठ शद्धि का प्रथम प्रयास)

चौदहवीं शताब्दी के कश्मीर इतिहास में लल्लेश्वरी / ललद्यद (14वीं शताब्दी ई॰ पहला दशक – 14वीं शताब्दी ई॰ नवाँ दशक) का दिव्यानुभूति सम्पन्न प्रखर व्यक्तित्व जाज्वल्यमान प्रकाशस्तम्भ के समान 21 वीं शताब्दी के आतंकी युग में भी सहृदय योगसिद्ध प्रबुद्ध जनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। इस महान योगिनी ने अपनी अध्यात्म–शक्ति के बल पर अपने अनुभूत सत्य को लोकभाषा के श्रुति–प्रिय अथवा श्रुति – कटु शब्दावरण में प्रस्तुत किया जो कई शताब्दियों तक मौखिक परम्परा में ही पैतृकसम्पत्ति के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के स्मृति–पटल पर अंकित होकर सुरक्षित अथवा असुरक्षित रहा।

हर युग में सामान्य जन का बौद्धिक स्तर समान नहीं रहता, अतः पाठ ग्रहण करते समय तत्सम के स्थान पर देशज, अथवा तद्भव रूप का आ जाना स्वाभाविक था। परिवर्तन विकास की प्रक्रिया का परिणाम है, किसी भी भाषा के जीवित होने का प्रमाण है। जो ज्ञानानुभूति मौखिक परम्परा में शताब्दियों तक चलती रहेगी उस में पाठान्तर अथवा पाठविकार की सम्भावना सब से अधिक रहती है।

कश्मीर में इस्लाम के द्रुत विकास के कारण तथा विदेशी भाषाओं के झंझावातों के सम्मुख लोक भाषा की क्षीण शक्तिहीन धारा कब तक अपने अस्तित्व को बचा पाती। पाठ में निरन्तर परिवर्तन होने लगे और लल्लेश्वरी के वाख विद्वानों के लिये चर्चा का विषय बन गये।

देशी महापण्डितों के साथ–साथ विदेशी विद्वानों ने भी इस

अध्ययन में रुचि ली। चर्चित भाषाशास्त्री सर जार्ज अब्राह्म ग्रियर्सन तथा सर रिचार्ड टेम्पल, जे. हिंटन नौलज़ ने इस सन्दर्भ में निरन्तर प्रयास किये। विभिन्न भाषा क्षेत्रों में सन्त जनों अथवा वयोवृद्ध बुजुर्गों से लल्लेश्वरी के वाख सुने और अपने भाषाज्ञान के आधार पर शुद्ध पाठ की कल्पना करते हुए वाखों का पाठ निश्चित करके लिपिबद्ध किया।

जनवरी सन 1961 ई॰ में जम्मू–कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से 'ललद्यद' शीर्षक से ललवाखों का संकलित रूप नस्तालीक़ लिपि में प्रकाशित हुआ। घाटी के जाने माने विद्वान प्रोफ़ेसर जय लाल कौल ने सम्पादक की भूमिका निबाही और प्रोफ़ेसर नन्द लाल कौल 'तालिब' ने तख़्ययुल (कल्पना) को परवान चढ़ा कर अपने शाइरानः अन्दाज़ में वाखों के अनुवाद प्रस्तुत किये। प्रथम संस्करण में 135 वाख संगृहीत थे। द्वितीय संस्करण जो सन् 1975 ई॰ में प्रकाशित हुआ, 258 वाखों का संग्रह बना। पुस्तक का तृतीय संस्करण 1984 ई॰ में प्रकाशित हुआ। वाखों की संख्या वही रही जो द्वितीय संस्करण में थी। अकादमी द्वारा प्रकाशित लल्लेश्वरी के इन वाखों के पाठ को शुद्ध, मौलिक और विश्वसनीय समझ कर हम इस सांस्कृतिक विरसे पर गर्वोन्नत होते रहे। हम इस तथ्य को भूल गये कि जनश्रुति के आधार पर किसी विदेशी शोधार्थी ने, जिसे न कुंडलिनी–योग की जानकारी थी न कश्मीर शैवशास्त्र का गहन बोध था, न योगाभ्यासी थे और न तत्त्व चिन्तक, जो सुना, सो लिपिबद्ध किया। किसी ने कहा, उन्होंने सुना, निरंतर सुना, सुनते रहे फिर कागज़ पर लिख दिया और 'कह गयो सन्त कबीर' की मुहर लगा कर ज़बरदस्ती हमारे मन मस्तिष्क पर चस्पाँ किया और चल दिये अपनी राह पर लक्ष्य की ओर।[1]

1. "--------Sir George Grierson asked his friends and former assistant Mahamoho Padya Pandith Munkund Ram Shastri, to obtain for him a good copy of Lalla Vakyani, as these verses of lalla's are commonly called by Pandits. After much search he was unable to find a satisfactory manuscript. But finally he came in touch with a very old Brahmin namely Dharma Dass Darvish of village Gush. Just as the professional story teller......... he made it his business for the benefit of piously disposed to recite Lalla's songs as he had received them by family tradition."

(A note written in 'Grierson Lalvakayani')

किसी विद्वान बन्धु ने पाठालोचन के आधार पर संगृहीत और सम्पादित वांखों का न अध्ययन किया और न विश्लेषण। सम्भावनाओं की तलाश तो दूर की बात है। वह चाहे भास्कर राज़दान हो या जार्ज अब्राह्म ग्रियर्सन, आनन्द कौल हों या जय लाल कौल, तालिब साहब हों या क्यलम साहब–'कह गयो सन्त कबीर' की धुन पर डोल मंजीरा बजाते रहे। परवर्ती युग में कई अन्य विद्वानों ने बिना कारण उक्तियों का पिष्टपेषण करते हुए धूलभरे हीरे को पोंछने का प्रयास किया और इस प्रकार लल्लेश्वरी के 'ललवाख' भी 'बिकाऊ' माल बन गये। प्रेरणा का मूल स्रोत तथ्यान्वेषण न होकर सुनामार्जन मात्र रह गया।

विस्थापन के बाद जम्मू में दूरसंचार विभाग के एक कर्मचारी श्री बी. एन. सोपोरी (मूलनिवास–सोपुर, कश्मीर) द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में "Voice of Experiences Lall Vaakh" (दो खण्ड) को पढ़ कर मैं मन ही मन उद्विग्न हो उठा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि लल्लेश्वरी के साथ न्याय नहीं हो रहा है।

सोपोरी जी की पुस्तक का प्रकाशन सम्भवतः 2000 ई॰ के आसपास हुआ होगा। लेखक महोदय ने पुस्तक पर प्रकाशन वर्ष लिखने का कष्ट नहीं किया। स्वर्गीय प्रो॰ जय लाल कौल ने यहाँ तक स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि–'वह कश्मीर की मकबूल तरीन (सर्वप्रिय) सूफी शाइरा है'। मैं व्यक्तिगत रूप से सूफ़ी मत को एक महान दिव्य ज्ञानसाधना के रूप में स्वीकार करता हूँ। इस सिद्धांत का अपना महत्त्व है, विशिष्ट साम्प्रदायिक संरक्षण प्राप्त है, अपना भव्य इतिहास है लेकिन लल्लेश्वरी के विषय में हमें कई अन्य दिशाओं में तथ्यान्वेषण हेतु सावधानी के साथ आगे बढ़ना होगा।

कश्मीर शैव–शस्त्र (त्रिक) (आगम+स्पन्द+प्रत्यभिज्ञा) कुंडलिनी योग (मूलधार से सहस्रार तक सात अवस्थाएँ एवं अनुभूतियाँ), अष्टांग योग (विशेष कर प्राणायाम), शक्तिवाद, वैष्णव भक्ति एवं आस्तिक षट् शास्त्र ज्ञान की उपेक्षा करके हम किसी सामान्य निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। लल्लेश्वरी को समझने के हेतु दृढ़ संकल्प के साथ साधनात्मक जीवन जीने के लिये कटिबद्ध होना आवश्यक है।

काश! मेरे पूजनीय बुजुर्गों ने ललवाखों के मूलपाठ को तलाशने का प्रयास किया होता तब–

(1) *'ज्ञान मार्ग हाक वॉर'* नहीं बनती
(2) *कोल–अकोल 'काल–अकाल'* नहीं हो जाता
(3) *योहय व्वपदीश छुय बॅ–हठा–'योहय व्वपदीश छुय बटा'* नहीं हो जाता।
(4) *'शिव गार तय केशव पालनस' – 'शिव गुर तॉय' केशव पलनस'* न बन जाता।
(5) *'लल ब्व च़ायस स्वमन भूर्भुवस' – 'लल ब्व च़ायास स्वमन बाग बरस'* न हो जाता।
(6) *'वुछुम शिव शक्त मीलिथ स्वः' – 'वुछुम शिव–शक्त मीलिथ त वाह'* न हो जाता।
(7) *'कंह न ल कंह न त कंह हुत क्यात' – कंह न त कंह न त कंह न त क्यात'* रूप धारण न करता।
(8) *'तवय ह्याछुम न–हंगय नचुन' – 'तवय मे हयोतुम नंगय नचुन'* रूप में विकृत न हो जाता।
(9) *'ग्वर सुन्द वान न युन रावन – त्याल प्योम' – ग्वर सुन्द वनुन रावन – त्याल प्योम* न बन जाता।
(10) *'मूडो क्रय छय न दॉरुन त पॉरुन' – 'मूढो क्रय छय न धारुन त पारुन'* न बन जाता।
(11) *'शिव छुय किव इष्टो (किम् इष्टो) त च़ेन व्वपदीश' – शिव छुय क्रूठ तय च़ेन व्वपदीश'* रूप में न बदल जाता।
(12) *'ब तस ऑसस अगऱ्य वज़य' – 'ब तस ऑसस आगरय व्यदुई'* न हो जाता।
(13) *'तथ सरस स्वकलि पोन्यचन' – 'तथ सरि सकली पोन्य चन'* नहीं बन जाता।
(14) *'ग्वरन वोनुनम कुनय वखचुन' – 'ग्वरन वोनुनम कुनुय वचुन'* न बन जाता। आदि

इस प्रकार असंख्य विकृत भाषा प्रयोगों ने लल्लेश्वरी के वाखों

के मूलरूप को तलाशने की प्रेरणा दी। ये अनमोल रत्न आज प्रक्षिप्तों की बाढ़ में बह गये हैं। शताब्दियों तक मौखिक परम्परा में रहने का यही परिणाम होता है।

वेगवती नदी के तट पर मौजों का नज़ारा देख कर आनन्दित होना एक बात है, बीच मंझधार में घुसकर गहराई भाँपना दूसरी बात है। यहीं परमानन्द की अवस्था का भान होता है। पिछले 18 वर्षों से विस्थापन की यातना सहते हुए श्रीमती बिमला रैणा ने ललवाखों के वर्तमान स्वरूप पर पहली बार आशांका व्यक्त की और गत कई वर्षों से योग अभ्यासिनी महिला मूल की तलाश में 'नेशनल लायब्रेरी कोलकत्ता' से 'रिसर्च लाइब्रेरी' श्रीनगर तक निरंतर चक्कर काटती रही। विषय काफ़ी मुश्किल, पेचदार, उलझनभरा, विवादास्पद मान्यताओं और लोक विश्वासों से जुड़ा था। कंकरीली भूमि पर चढ़ाया सीमेंट का लेप, छेनी और हथौड़े से तोड़ना था। इस में कठिन परिश्रम और गहन अध्ययन की आवश्यकता थी। लेखिका ने आरम्भ में निर्णय लिया था कि केवल 70 वाखों को ही विशेष अध्ययन की परिधि के भीतर लिया जायेगा। बाद में यह संख्या 79 वाखों तक पहुँची।

जम्मू कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी द्वारा नस्तालीक़ लिपि में प्रकाशित 'ललद्यद' पुस्तक में संगृहीत वाखों को अध्ययन के हेतु आधारस्वरूप ग्रहण किया गया। 'वाख' विशेष को ग्रियर्सन महोदय ने किस रूप में प्रस्तुत किया है, श्री बी. एन. पारिमू ने किस रूप में लिया है तथा प्रोफ़ेसर जयलाल कौल ने किस रूप में ग्रहण किया उसे ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करके लेखिका मूलरूप की खोज में विश्वसनीय सम्भावनाओं की तलाश में जुट गई। उन्हें जहाँ पाठविकार, पाठ अशुद्धि, प्रक्षितप्तांश अथवा खानापूर्ति के हेतु जोड़े गये अंश मिले, उन्हें रेखांकित करते हुए तथा विश्लेषणात्मक टिप्पणियाँ जोड़कर मूलपाठ की प्रामाणिकता के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

लगता है कि लेखिका भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर शब्दों की अन्तरात्मा पर विचार कर रही है। संस्कृत के तत्सम शब्द भण्डार से लिये गये शब्दों में तद्भव रूप किस प्रकार स्वीकृत हुए अथवा

देशज शब्दों के व्यवहार की प्रक्रिया क्या रही है और शताब्दियों तक मौखिक परम्परा में रहने के कारण विकार अथवा विकृति की क्या सम्भावनाएँ रही होंगी लेखिका ने अपनी संतुलित सूझबूझ से इन तत्त्वों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

लेखिका का मानना यह है कि प्रस्तुत पुस्तक नवीन दृष्टि से किया गया एक प्रयास मात्र है। सम्भव है कि कई विद्वान बन्धु इस से सहमत नहीं होंगे, उन्हें अपनी बात पर डटे रहने की पूर्ण स्वतंत्रता है। लेखिका केवल यह कहना चाहती है कि किसी एक वाख में शब्दार्थ ग्रहण एवं प्रयोग की सम्भावना यह भी हो सकती है जिसे लेखिका ने तर्काश्रित समझ कर प्रस्तुत किया है। यहाँ ग़लत और सही का प्रश्न ही नहीं उठता।

पुस्तक का शीर्षक भी इस दृष्टि से विचारणीय है, 'ललद्यद मेरी दृष्टि में'। यह लेखिका का निजी दृष्टिकोण है। पाठक लेखिका के साथ सहमत हो सकता है अथवा असहमत। वह निर्णय करने के लिये पूर्ण स्वतंत्र है।

भास्कर राज़दान साहब, ग्रियर्सन महोदय, स्टेन महोदय, सर रिचॉर्ड टेम्पल, आनन्द कौल साहब, पण्डित जिया लाल क्यलम साहब, श्री ए. के वांचू और प्रोफ़ेसर जय लाल कौल ने ललवाखों को जिस रूप में प्रस्तुत किया है लेखिका यह कदापि नहीं कहती कि वह बिल्कुल ग़लत है और जो कुछ लेखिका कहती है वही सही है। उन का केवल इतना निवेदन है कि समय के झंझावातों में लल वाखों का मूल पाठ विकृत हो चुका है और पाठालोचन (Textual Criticism) के आधार पर इस विषय में शोध करने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता से प्रेरित होकर उन्होंने जो अनुसन्धानात्मक कार्य किया है उसे ही इस पुस्तक के द्वारा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठकों की राय मूल्यवान है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन पाठक भी लेखिका से सहमत हो जायें, यह आवश्यक नहीं है।

मेरा विचार है कि लेखिका सम्भावनाओं की तलाश में जुटी और पाँच वर्ष निरन्तर साधनारत रह कर उन्होंने तर्क की मथानी से

ललवाखों का मंथन करके छाँछ–मट्ठा अलग किया और शेष रह गया माखन।

हिन्दी भाषा (नागरी लिपि) में प्रकाशित पुस्तक की एक विशेषता यह है कि सब से पहले 'वाख' नस्तालीक़ लिपि में उसी रूप में दिया गया है जिस रूप में यह प्रोफ़ेसर जय लाल कौल साहब की पुस्तक में दिया गया है। विश्लेषणात्मक व्याख्या देने के बाद अन्त में वाख का शुद्ध रूप (लेखिका के अनुसार) प्रस्तुत किया गया है और साथ ही उसका पद्यानुवाद हिन्दी में दिया गया है। शब्द अर्थ के अंतर्गत वाख में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों के अर्थ दिये गये हैं और शब्दों के रूप–परिवर्तन पर भी यथासम्भव विचार किया गया है। प्रयास यह रहा है कि मौलिक शब्दरूप को ढूँढ कर उस के विकारग्रस्त तद्भव रूप पर भी विचार किया जाये।

यहाँ मैं इस तथ्य पर प्रकाश डालना चाहता हूँ कि किसी भाषा का रूप परिवर्तित होकर विकसित होना ही उस के जीवित होने का प्रमाण है। जिन भाषाओं में विकास की प्रक्रिया रूक जाती है वे धीरे–धीरे भाषा मानचित्रावली (Language Atlas) से लुप्त हो जाती हैं। यह विकास विद्वानों, भाषा –वैज्ञानिकों, भाषा पण्डितों, अभिजात वर्ग एवं शिक्षित समाज पर निर्भर नहीं रहता। यह विकास सामान्य जनमानस की यादृच्छा पर निर्भर रहता है। भाषा सर्वसाधारण लोक के द्वारा सर्वप्रथम व्यवहार में लाई जाती है और लोक ही समय, सुविधा और आवश्यकता अनुसार उस के रूप में परिवर्तन कर देता है। ये परिवर्तित अथवा विकृत रूप सर्वप्रथम दैनिक बोली में व्यवहृत होते हैं और धीरे–धीरे लिखित भाषाओं में अपनाये जाते हैं। तत्पश्चात् इस का प्रवेश साहित्यिक भाषाओं में होता है। इस के बाद अध्ययन हेतु भाषा–पण्डितों अथवा भाषा– वैज्ञानिकों का ध्यान भाषा के इस परिवर्तित रूप की ओर जाता है। यह लोगों की इच्छा पर निर्भर होता है कि किस रूप को स्वीकार करें और किस को छोड़ दें। हम सब इस तथ्य से भली–भाँति परिचित हैं कि भाषा 'यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था' है।

लगभग 400 वर्षों तक लल्लेश्वरी के वाख मौखिक परम्परा में

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक श्रव्य–काव्य के समान पंहुँचते रहे। विज्ञ पाठकों का ध्यान एक बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। मुझे व्यक्तिगत रूप से विश्वास नहीं होता कि लल्लेश्वरी के बाद 400 वर्षों तक मौखिक परम्परा की स्थिति रही होगी। यह सम्भव नहीं है। अवश्य ही किसी पण्डित, योगाभ्यासी, शारदा लिपि के जानकार, ज्ञानी, बुद्धिजीवी ने अवश्य इन्हें लिखित आकार प्रदान किया होगा, लेकिन सत्ताधारियों की असावधानियों के कारण वे कहीं लुप्त हो गये अथवा उन्हें नष्ट किया गया होगा। पूछना पड़ेगा वितस्ता से कि कब, कहाँ और कैसे उस ने इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को जल समाधि प्रदान की। यह इतिहास का कड़ुआ सच हो सकता है।

लेखिका निरन्तर सम्भावनाओं की तलाश में रही है अतः अन्तिम क्षण तक मूल पाठ के स्वरूप को स्थिर करने के हेतु प्रयोग होते रहे। शोधकर्ता महिला ने कठिन परिश्रम, गहन निष्ठा और दृढ़ संकल्प के साथ यह काम आगे बढ़ाया है। पाठकों, विद्वानों, विशेषज्ञों और योग साधक भक्त जनों के हेतु यह एक चुनौती है। आप सब महानुभावों को पूरा अधिकार है कि अपने निजी मत को वाणी प्रदान करें। लेखिका के साथ ज़बरदस्ती सहमत होने की आवश्यकता नहीं। वह तो स्वयं सम्भावनाओं को तलाश रही है। आप उस तलाश में उन्हें अपना बहुमूल्य सहयोग दे सकते हैं। असहमति व्यक्त करना भी उतना ही मूल्यवान है जितना सहमति को दर्शाना। आप के सुझाव लेखिका के पथ को आलोकित करेंगे और लल्लेश्वरी के रचना संसार को उस के सही भारतीय परिप्रेक्ष्य में विश्वसनीय सन्दर्भों के साथ व्याख्यायित करना सम्भव हो सकेगा। केवल इस बात पर ध्यान देने की अथवा विचार करने की आवश्यकता है कि 'ज्ञान मार्ग हाकवॉर नहीं बन सकती', 'भू भुवः' बाग बरस नहीं हो सकता', किव इष्टो (किम् इष्टो)–'क्रूठ' रूप में विकार ग्रस्त नहीं हो सकता। 'गथि रोटुम'–गटिरोटुम नहीं हो सकता, 'व्यहअख्युन' व्खशुन नहीं बन सकता, 'स्वकलि' – सकली नहीं बन सकता तथा 'वख़चुन' – 'वचुन' नहीं हो जाता, तनिक गहराई के साथ विचार करने को आवश्यकता है। किसी शोधकर्ता

विद्वान की शेरोशाइरी किसी कवि सम्मेलन में एक मधुपायी को रिझा सकती है किसी विषपायी शोधकर्ता को नहीं।

21 वीं शताब्दी में तर्काश्रित ज्ञान–बुद्धि हमें विवेक की तुला पर तौलकर तथ्याश्रित बात कहने को बाध्य कर रही है। लल्लेश्वरी का रचना संसार समसामयिक युग में भी ज्ञान– स्रोतस्विनी को प्रवाहित करने में समर्थ है। यह तो शाश्वत साहित्य है क्षणिक वाहवाही के हेतु तुकबन्दी नहीं है। इस में आत्मबोध एवं आत्मप्रकाश के शक्तिकण निहित हैं। रहस्यमय तत्त्वों और अलौकिक स्वानुभूतियों के स्फटिक कणों का स्फुरण (चमकना) है। गहन तमस के बीच टिमटिमाती स्वर्ण रश्मियों की आभा है। इस में व्यक्ति (मैं) सम्पूर्ण समष्टि के साथ प्रतिबिम्बित है। इसे समझने और पहचानने के लिये क्रियावान साधक की निष्ठा और ज्ञानगरिमा अपेक्षित है। लल्लेश्वरी को पहचानने के लिये कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास को जानना और पहचानना आवश्यक होगा। यह यात्रा वसुगुप्त से शुरू होती है और स्वामी लक्ष्मण जू तक निरन्तर प्रवाहित होती रही। जान लीजिये कश्मीर के सांस्कृतिक वैभव को आठवीं शताब्दी के मध्य से लेकर 20 वीं शताब्दी के अन्त तक, आप स्वतः गहन घटाओं को चीरती स्वर्ण रश्मियों से नहला उठेंगे। चिन्तन स्रोत से प्रवाहित कई धारायें यहाँ आप को एक साथ प्रवाहित मिलेंगी।

हमें इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि लल्लेश्वरी ने लोक मानस को महत्त्व दिया है। उस के सामने किसी महान योगी की तुलना में एक सर्वसाधारण जीव अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसने अभिव्यक्ति के साधन के रूप में 'वाख शैली' और लोक– भाषा को अपनाया। उस ने वाख कहे। आज वाख के साथ गीत, भजन, वचुन, ग़ज़ल और न जाने क्या–क्या एक साथ लिखना फ़ैशन बन गया है। लल्लेश्वरी के लिये सर्जन परिपक्व मानस के तथ्याश्रित चिन्तन का परिणाम है जिस में आनन्द के रसकण मोतियों के सदृश अपनी आभा बिखेर देते हैं।

'वाख' संस्कृत के मूलशब्द 'वाक्' का तद्भव रूप है। 'वाक्' अर्थात् वाणी, ध्वनि, कथन (भीतरी सन्देश) बोलने की इन्द्रिय या सरस्वती। 'मुहँ से उच्चरित सार्थक ध्वनि वाक् है। काव्यविधा के रूप

में वाक् एक चतुष्पदी है जिस में प्रायः एक साधनारत कवि गुरु उपदेश को संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। जब एक सिद्ध साधक अपने निजी अनुभव या गहनानुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है तो वाक् अभिव्यक्ति के साधन के रूप में आकार ग्रहण करता है। साधक रहस्यमय रूप में केवल संकेत करके बात छोड़ देता है और स्वयं किनारे रह कर शान्त मन से धीरे–धीरे अद्भुत अलौकिक से परिचित होकर भीतरी उफ़ान को बाह्याभिव्यक्ति प्रदान कर देता है। ऐसा साधक शान्त, शिष्ट, सौम्य अवस्था अर्थात् आत्म–नियंत्रितावस्था में सर्वजन के निकट रहकर भी उन से कोसों दूर रहता है। भीतरी लोक में विचरण कर वह आनन्द रश्मियों से सिक्त हो उठता है। उसे न प्रचार चाहिये न गुणकीर्तन, न जय–जय–कार और न प्रशसांत्मक सूक्तियाँ। वह इन्द्रिय निग्रह के कठोर साधना पथ को ग्रहण कर राजहंस के समान मन के मानसरोवर में मौक्तिक कणों की तलाश में उड़ान भरता है। ज्ञान रश्मियों से दीप्त साधक कभी–कभी अपने भीतरी अनुभव को सहज रूप में अभिव्यक्त करता है और बात कह कर चुप्पी साध लेता है।

'वाख' में कभी–कभी सिद्धकवि किसी सामाजिक परिदृश्य को भी प्रस्तुत करके या तो व्यंग्य कसता है, चोट करता है अथवा जनमानस को सचेत कर कर्तव्यकर्म के हेतु प्रेरित करता है। कभी–कभी मानवजीवन की किसी सचाई, कमज़ोरी अथवा गुण को भी वाख के मूल कथ्य के साथ जोड़ दिया जाता है। व्यक्तिगत साधना की उष्णता एवं कर्मरत जीवन– निर्वाह की महिमा वाख को जीवन सन्दर्भों के साथ जोड़ देती है। कुंडलिनी योग और प्राणायाम योग साधना ने लल्लेश्वरी के वाखों को अर्थ गाम्भीर्य की दृष्टि से महिमामंडित किया है और स्वानुभूत सत्यकथन ने अभिव्यक्ति को विश्वसनीय लोक मान्यताओं और विश्वासों के साथ जोड़ दिया है।

लल्लेश्वरी में अद्भुत सृजानात्मक प्रतिभा थी। वाखों का गहन अध्ययन करने से इस कथन की सत्यता सिद्ध होती है। वह एक कवयित्री भी थी सृजन की बारीकियों से पूर्ण परिचित। उस के पास

ज्ञान की उष्णता है, चिन्तन का गाम्भीर्य, बोध की प्रखरता एवं प्राप्ति का तेज। सब ने मिल कर सृजन की कला को मनमोहक बना दिया है। मैं ने सोच समझ कर ही लल्लेश्वरी के व्यक्तित्व का यह रेखाचित्र प्रस्तुत किया है।

21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में श्रीमती बिमला रैणा ने लल्लेश्वरी की पुनीत स्मृति को एक बार फिर जनमानस में उजागर किया है, दीप्तिमय बना दिया है। शान्त जनमानस उद्वेलित हो उठा और हृदयाकाश को स्पर्श करती लहरें चौदहवी शताब्दी के लोक मानस की कान्ति छटा को निहारने के हेतु बेकल (बेचैन) हो उठीं।

'रश माल्युन म्योन' 298 वाख (सन् 1998 ई॰) एवं 'व्यथ मा छि शोंगिथ' 213 वाख (सन् 2003 ई॰) के प्रकाशन के साथ ही बिमलाजी सांस्कृतिक पुनर्जागरण की अग्र दूतिका के रूप में सर्वत्र चर्चा का विषय बन गयी। यहाँ तक लोगों ने कहा कि 'लल्लेश्वरी का पुनः जन्म हुआ है'। अथवा 'बिमला रैणा 21 वीं शताब्दी में लल्लेश्वरी का रूप है।' बिमलाजी मूलतः योगसाधिका है। मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है और गुरुमाता के रूप में उन के आँचल की शुभ्रश्वेत छाया में वर्षों साधनारत रहा। लल्लेश्वरी के वाखों पर वही विचार कर सकता है जिस ने स्वयं क्रियावान बनकर योग साधना की हो और साधना पथ के संकट को भोगा हो। जो अद्भुत की तलाश में इतना खो जाये कि भौतिक अस्तित्व की सुध ही न रहे। कोई आलिम अपनी आलिमाना शख़्सीयत का कितना ही ढोल क्यों न पीटे अथवा कोई शायिर कल्पना के सहारे कितनी ही ऊँची उड़ान क्यों न भर ले–हाथ उन्हें कुछ नहीं लगता क्योंकि बात उन की समझ के बाहर है। यह उन का अनुभूत सत्य नहीं अतः न्याय करने में सक्षम नहीं।

बिमलाजी अद्भुत और अलौकिक की तलाश में लगभग 30–35 वर्षों से साधनारत है। उन में दिव्य चक्षुओं से निहारने की क्षमता है। वह गहरी तह में जाकर लाल ढूँढ कर बाहर निकाल लाती है। मेरा विश्वास है कि तब तक पहचान ही नहीं हो पायेगी जब तक सत्यान्वेषी दृष्टि भौतिक आकर्षणों के घटाटोप को चीर कर अद्भुत अलौकिक के सौन्दर्य

को निहारने की क्षमता न रखती हो। हर एक कुम्भकार (कुम्हार) नहीं होता। माटी को कमाना है, चाक पर चढ़ाना है और आँगुरी/आँगुली कला से बरतन को आकार देना है। दूसरे दिन भीतर हाथ सहाय देकर बाहर से ठोंकना पीटना होगा और फिर भट्ठे में (पजावा) डाल कर तपाना होगा। जो तप सकता है वही पुख़्ता बन कर हमें अपनी ओर आकर्षित करता है। कवयित्री कुम्भकार की भूमिका निबाहने में दक्ष है। अतः अपने निजी अनुभव और सामर्थ्य के आधार पर उन्होंने लल्लेश्वरी के वाखों की तह तक पहुँचने का साहस किया है।

उन का यह अध्ययन शुद्ध भाषावैज्ञानिक अध्ययन है जो पाठालोचन के मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है। जब एक ही पाठ के कई रूप प्रचलित हों तब यह समस्या हमारे समाने उपस्थित हो जाती है कि इन विविध रूपों में से मूल और सही रूप कौन सा है और क्यों। 'क्यों' पर विचार करना आवश्यक है, नहीं तो 'कौन' भीतर ही भीतर खोखला प्रतीत होगा।

मैं एक बार पुनः इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इस महिला शोधकर्ता के निष्कर्षों से मतभेद भी हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि हम उन की हर बात से सहमत हों। असहमति भी कभी कभी नये मार्गों को तलाशने के हेतु प्रेरित करती है। लेखिका केवल सम्भावनाओं को रेखांकित करते हुए वाखों के पाठ पर विचार करती हैं। हमें प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा। आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व लल्लेश्वरी ने आत्मानुभूत सत्य को वाखों के माध्यम से मुखर किया है। शताब्दियों तक ये मौखिक परम्परा में प्रचलित रहे, कम से कम आज हमें इस बात को मानने की विवशता है। 600 वर्षों के बाद किसी भी भाषा का लोकव्यवहार रूप समान नहीं रहता। विकार और परिवर्तन की अनेक सम्भावनाएँ वहाँ अधिक क्रियारत रहती हैं जहाँ पाठ मौखिक परम्परा में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता है। दो संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन से भी भाषा विकार ग्रस्त हो जाती है। सिद्धान्त के बदले सुविधा पाठ विकार के लिये अधिक उत्तरदायी होती है। यह जनमानस की इच्छा पर निर्भर करता

है कि किन शब्दों को वे मान्यता प्रदान करें और किन्हें त्याग दें। भाषा का स्वरूप किसी सांस्कृतिक संक्रमण (Infection, Transgression) के कारण नष्ट भी हो जाता है। ब्रिटिश राज्य में कोट पतलून पहनकर और नेकटाई बान्ध कर क्या भारतीय अंग्रेज़ नहीं बनें!

व्यक्तिगत रूप से मुझे श्रीमती बिमला रैणा की कर्तव्य– निष्ठा, संकल्प शक्ति और संतुलित रूप से विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता ने प्रभावित किया है। वह बहुत सोचसमझ कर किसी निर्णय पर पहुँचती है। कभी–कभी इसमें महीनों का समय भी लग जाता है लेकिन एक बार निष्कर्ष सीमा पर पहुँच कर वह पीछे मुड़ कर देखना नहीं चाहती। शोध में आत्मविश्वास एवं तर्काश्रित विवेचनशक्ति ही अन्तिम निर्णय तक पहुँचने में सहायक सिद्ध होती है।

मैं जानता हूँ कि इस पुस्तक के विषय में पर्याप्त चर्चाएँ होंगी। लेखिका को कठघरे में खड़ा करने के लिये विद्वान बन्धुओं का उतावलापन सीमाँए तोड़ कर उफ़ान पर आजायेगा। गोष्ठियों और परिचर्चाओं में कई बातों को नकारा जायेगा और कई बातों को चुपचाप स्वीकार किया जाये गा। एलक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया का भरपूर प्रयोग कर आपत्तियाँ दर्ज करायी जायेंगी। लेखिका को कई जगह स्पष्टीकरण देना पड़ेगा जिसके लिये पुस्तक प्रकाशन से बहुत पहले ही वह तैयार बैठी हैं। लेकिन इस में कोई सन्देह नहीं है कि एक रहस्यवादी कवयित्री के साथ बिमला जी प्रस्तुत रचना के द्वारा शोध के क्षेत्र में भी एक सफल अन्वेषिन् सिद्ध होंगी।

मुझे इस पुस्तक के हेतु अग्रलेख लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने गहन अध्ययन के पश्चात् जो कुछ समझा, पहचाना, अनुभव किया, स्वीकारा या अस्वीकार किया उसे ही एक क्रम में साकार रूप प्रदान किया–

'खोटा सिक्का भूमिगर्भ में दबकर
घिस कर, तूफ़ानों को सह कर, बन जाता है
इतिहास का साक्षी
चश्मदीद गवाह

राजतरंगिणी के जन्मोत्सव का
एक अमूल्य उपहार।'

2007 ई॰ में बिमला जी ने इस पुस्तक को एक साथ दो भाषाओं में प्रकाशित किया। कश्मीरी भाषा में पुस्तक का नाम है – 'लल–म्यॉनि नज़रि'।

जम्मू कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी द्वारा हर वर्ष विभिन्न भाषाओं में लिखी श्रेष्ठ पुस्तकों को पुरस्कृत किया जाता है। वर्ष 2007 ई॰ के लिये कश्मीरी भाषा में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का पुरस्कार श्रीमती बिमला रैणा कृत 'लल–म्यॉनि नज़रि' पुस्तक को दिया गया। पुरस्कार के रूप में 51 हज़ार रूपये नक़्द, एक स्मृति चिह्न, एक प्रशस्ति पत्र, एक शॉल तथा पुस्तकें इत्यादि प्रदान की जाती हैं।

लेखिका को मेरी ओर से शत–शत बधाई।

(16 अगस्त, 2006 ई॰,** जन्माष्टमी**)
परिवर्धित रूप
(9 दिसम्बर, 2008 ई॰,** गीताजयंती**)

शैवमत : अन्तर्दर्शन एवं आत्मविश्लेषण

[17–18 मार्च 2007 ई॰ को जम्मू में 'कश्मीर शैवशास्त्र' से सम्बन्धित दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन हुआ। मुझे अपना विशेष पत्र प्रस्तुत करने का लिखित निमंत्रण मिला। मैंने बहुत साहस के साथ कश्मीर शैवशास्त्र से सम्बन्धित लेख कश्मीरी भाषा में लिखा। लेख अस्वीकृत हुआ इस कारण से कि कश्मीरी भाषा में लिखा गया है। अंग्रेज़ी के महापण्डितों को पचेगा नहीं।

मुझे आदेश मिला कि लेख हिन्दी में लिखा जाये। गुरु महाराज का आदेश मान कर मैंने हिन्दी भाषा में लेख लिखा। मैं ही जानता हूँ कि मुझे पुनः कितना परिश्रम करना पड़ा। लेख पुनः अस्वीकृत हुआ इस कारण से कि मैंने स्पष्ट लिखित रूप में सूचना दी थी कि प्रस्तुत लेख से एक भी शब्द बदला नहीं जा सकता।

मुझे दण्ड मिला, निमंत्रण पत्र तक नहीं भेजा गया।

मैं बड़ी नम्रता के साथ जनता की अदालत में अपना लेख प्रस्तुत करके न्याय पाने के हेतु याचना कर रहा हूँ। निर्णय पाठकों के हाथ में है।]

कश्मीर शैवशास्त्र का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सृष्टि विकास परमशिव की इच्छा का परिणाम है। 'शिव' शुभ, मंगल, कल्याण, सुख, हर्ष, अद्वैत ब्रह्म अथवा मोक्ष–उपलब्धि का माधुर्य सिक्त आनन्दमय अनुभव है। इसे ही मैं अबाधित या अप्रतिबद्ध उत्तम (Absolute good) मानता हूँ। यही प्रकाश (Light) और विमर्श (Reflection) के रूप में

क्रियावान कर्मयोगी के मानसपटल पर प्रभासित (आलोकित) हो उठता है। प्रकाश से मेरा अभिप्राय अद्‌भुत तेज, नूर (विलक्षण ज्योति) प्रभायुक्त तेज अर्थात् अबाधित प्रकाश (Absolute light) से है जिस की व्याख्या करते हुए हमारे गुरुदेव ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू कहते थे – 'योह्य गव आसुन' अर्थात् 'जो मूलभूत सत्य है उस का एहसास'।

'विमर्श' से अभिप्राय है– अर्जित ज्ञान, 'हक की पहचान' बुद्धि प्रकाश, तर्काश्रित ज्ञान जिसे गुरुदेव समझाते हुए कहते थे – 'योह्य गव बासुन' अर्थात् यही तो आभास है। अतः 'आसुन' त 'बासुन' अर्थात Absolute Light and Absolute Consciousness दिव्य चेतना एवं चिद् + आभास (चिदाभास) – अन्तकरण में प्रतिबिम्ब आभास – शुद्ध चैतन्य रूप शिव की परिपूर्ण पहचान है।

यही 'आसुन' त 'बासुन' अर्थात् दिव्य प्रकाशानुभूति एवं चिदाभास ही 'चैतन्यम् आत्मा'–प्रथम शिवसूत्र है। यह आत्मा, चेतना तत्त्व अथवा परमतत्त्व ही चित्त की जाग्रतावस्था का व्यवहार दृष्टि से तथ्यबोध है। यह मैंने कोई नई बात तो नहीं कही। आप सब आदरणीय पाठक गण इस से परिचित हैं। अपनी बात को कहने के लिये मैंने केवल आधारभूमि तैयार की।

मैं बड़ी नम्रता के साथ यह निवेदन करना चाहता हूँ कि शिव के इस उल्लास और आनन्द का एक सशक्त आधार है जिस के बिना Absolute Consciousness (परम चेतना) या चिदाभास कराना शिव के लिये भी सम्भव नहीं। शिव का यही सशक्ताधार 'स्पन्द' कहलाता है।

यहाँ मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि 'शिव' शब्द से मेरा अभिप्राय परमशिव से है जो सच्चिदानंद स्वरूप हैं, निर्गुण निराकार हैं, गुणातीत हैं, ज्योतिस्तम्भ हैं। तत्सत् ब्रह्म या ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं सदाशिव, महेश्वर, महादेव, रुद्र अथवा शंकर की बात नहीं करता हूँ। वे सब सृष्टिविकास की मूल इच्छा के बाद शिव भक्तों के लिये अलौकिक विश्वास के ठोस साकार बोध है।

'शिव' – श+इ+व इस में से 'इ' निकाल दीजिये। शेष रह जाता है 'श' तथा 'व' अर्थात् शव। इस मूल ह्रस्व स्वर 'इ' का कितना

महत्त्व है–यह देख कर मैं आश्चर्य चकित रह जाता हूँ। मैंने अपने एक कश्मीरी भाषा में लिखे शोधपत्र में इसे 'ज़ीर' कहा अर्थात् 'हरकत'। कभी कभी घर में नई नवेली दुल्हिन/दुलहन हल्का सा संकेत करके अथवा धीरे से कुहनी मार कर अपने पति से बहुत कुछ कह देती है जो शायद घण्टों की बातचीत में भी न कहा जा सके।

यही 'ज़ीर' – हल्का सा धक्का 'इ' मात्रा है जो 'शव' के साथ जुड़ कर इसे शिव बना देती है। यह 'इ' उसे गतिशील बना देती है, चेतना लौटाती है। यदि यह 'ज़ीर' – 'इ' की मात्रा – न होती तो शिव अपनी इच्छा पूर्ति कहाँ कर पाते। यही 'इ' शिव की शक्ति अथवा 'स्पन्द' है।

पाठक गण! कृपया एक क्षण के लिये सोचिये यदि शक्ति स्वरूप नारी न होती, यदि आधार स्वरूप भूमि न होती, यदि तीन मूलभूत स्वर ध्वनियों में 'इ' की ध्वनि न होती तो? शिव कितनी ही रोटियाँ सेंक लेते पर स्वाद ग़ायब। पंचमुखी सगुण रूप धारण करने के पश्चात् खुद उन्हें इस तथ्य का एहसास होता है। मैं शक्ति के आविर्भाव की ओर संकेत कर रहा हूँ। अब शिव द्वारा सेंकी गई रोटियों पर तनिक शहद की कुछ बूँदे डाल दीजिये। चख कर दोखिये क्या स्वाद है! यही शहद या यही स्वाद 'स्पन्द' है। माथे का मस्तक–भषूण (ड्यक–टिक), गले की तुलसी, कानों में कर्णफूल और नाक में नथ अथवा नथुनी (छोटा नथ) – सर्वत्र शोभाकर्षण और यही शोभाकर्षण है शिव के हेतु 'स्पन्द'।

तनिक ध्यान देने की आवश्यकता है कि यदि शिव की इच्छा को व्यवहार में लाना होगा तो क्या यह शक्ति के बिना सम्भव है? 'स्पन्द' अर्थात् कम्पन, प्रस्फुरण, गति, पुलक, सिहरण (vibration, throbbing)। स्पन्द शास्त्रियों के अनुसार सम्पूर्ण विश्व परमशिव का स्पन्द मात्र है। मैं तनिक इस पिटी पिटायी लीक से अलग हट कर सोचने का प्रयास करता हूँ। परमशिव भी मूलतः स्पन्द से ही गतिशील बन जाते हैं। 'स्पन्द' का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है इसे अधीनस्थ तत्त्व न समझ कर स्वतंत्र शक्ति तत्त्व के रूप में स्वीकार करना होगा, क्योंकि चेतना का दूसरा नाम स्पन्द है। शास्त्रीय विवेचन के आधार पर इस

सिद्धान्त का सम्बन्ध 'प्रमाता' और 'प्रमेय' से जोड़ा जाता है। 'प्रमा'–बोध ा, चेतना या यथार्थ ज्ञान है। प्रमाता इस यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करता है तथा 'प्रेमय', 'प्रमा' का विषय है अर्थात् यथार्थ ज्ञान का विषय और इस लेख के सम्बन्ध में 'स्पन्द'। स्पन्द शिव की चेतना है। शिव यदि ज्ञानरूप है तो शक्ति क्रियारूप है। सृष्टि विकास के हेतु ख़ालिस ज्ञान पंगु है क्रिया के बिना। मेरा विश्वास है कि गतिशीलता का दूसरा नाम 'स्पन्द' है। शिव के हृदय की धड़कन, अस्तित्व विकास की बलवती इच्छा का परिणाम, असीम आनन्द की दिव्यानुभूति। यह ज्योति स्तम्भ का वैभवोल्लास है। तनिक 'इ' की मात्रा के बदले 'अ' की मात्रा लगा दीजिये तो 'शिव' शव हो जायेगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि त्रिक्शास्त्र का यह द्वितीय अंग अर्थात् 'स्पन्द शास्त्र' तीनो अंगो में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। लीलामय जगत के विकास का कारण। इसी गहनानुभूति को शैव पण्डितों ने शब्दावरण से महिमामंडित कर दिया। भट्ट कलट ने 'स्पन्द वृत्ति' लिखी। इस से पूर्व 'स्पन्द कारिका' लिखी गई थी जिस के लेखक के विषय में तनिक मतभेद है (वसुगुप्त या भट्ट कलट)। उत्पल देव ने 'स्पन्द प्रदीपिका' लिखी और क्षेमराज ने 'स्पन्द निर्णय'। बात आगे बढ़ती गयी, चक्की निरन्तर पिसती रही, कहीं बारीक और कहीं दबीज़ (मोटा)। शिव की शक्ति को 'स्पन्द' का नाम देकर इसे महिमामंडित किया गया।

यह सब तो ठीक है लेकिन क्या कारण है कि कश्मीर शैव शास्त्र के इतिहास में मातृशक्ति का योगदान नगण्य रहा है। क्यों? इस के कारण क्या हैं? नारी उपेक्षा क्या इस पुरुषप्रधान समाज का व्यसन है। 7 वीं शताब्दी से लेकर 20 वीं शताब्दी तक हम ने नारी समाज में उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, स्वामी राम–अथवा स्वामी महताब काक सदृश किसी महान शैव–शास्त्र–ज्ञाता विदुषी अथवा योगिनी को जन्म क्यों नहीं दिया। कृपया ललद्यद का नाम लेकर मुझे संतुष्ट कराने का प्रयास न कीजिये।

कहीं यह Male Chauvinism (पुरुष प्रधान समाज की अहमन्यता)

का जीता जागता प्रमाण तो नहीं हैं। मैंने स्पष्ट शब्दों में यह बात कह दी कि 'स्पन्द' के बिना सब सूना है। बिना स्पन्द के आगम व्यर्थ है और प्रत्यभिज्ञा निष्प्रयोजन। जब तक शक्ति नहीं तब तक विकास नहीं, विस्तार नहीं, सृष्टि नहीं, कुछ भी तो नहीं। पूछना पड़ेगा वसुगुप्त से लेकर स्वामी महताब काक तक योगविद् महापुरुषों से कि इस के लिये वे कितने उत्तरदायी हैं। क्या उन्होंने मातृशक्ति के साथ अन्याय नहीं किया। क्या यह उन की संकीर्ण मानसिकता का प्रमाण तो नहीं है। यहाँ आज हम 33 प्रतिशत आरक्षण की सीमा पर पहुँच गये हैं। यह क्या कारण है कि विगतकाल में एक भी शैवशास्त्र से सम्बन्धित नारी स्कॉलर के योगदान की चर्चा नहीं होती।

हमारे गुरुदेव स्वामी लक्ष्मण जी अपने आप में एक महान समाज सुधारक थे। वे विधिवत कक्षाएँ लेकर शास्त्रीय मुद्दों पर विचार करते थे और बहुत रुचि के साथ उदाहरण दे दे कर गूढ़ विषयों की व्याख्या करते थे। मातृशक्ति को उन्होंने बहुत उत्साहित किया। इस पुरुष–प्रधान समाज के स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिये कार्यरत रहे, ऐसा मेरा विश्वास है।

बन्धुओ! मैं एक विशेष बात की ओर संकेत कर रहा हूँ। कश्मीर शैवशास्त्र को अगर ज़िन्दा रखना है तो मातृशक्ति के द्वारा घर–घर पहँचाना होगा। ताकि प्रत्येक नवजात शिशु की शिराओं में माँ के स्तनों से प्रवाहित दुग्ध के साथ मिला हुआ शैव सिद्धान्त भी प्रवाहित हो उठे। नहीं तो आज जो हृदय–विदारक स्थिति है वह भीषण रूप धारण कर सकती है। 95 प्रतिशत कश्मीरी परिवारों से कश्मीर शैवशास्त्र निष्कासित हो चुका है। आज स्थिति यहाँ तक पहुँच चुकी है कि आंगल भाषा के माध्यम से हम कभी–कभी नवजात पीढ़ी को कश्मीर शैवशास्त्र का परिचय दे रहे हैं। देश की एक अरब 15 करोड़ से अधिक जनसंख्या में सात–आठ हज़ार या अधिक से अधिक दस हज़ार जन ही संस्कृत पढ़ सकते हैं अथवा संस्कृत भाषा में विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं, यही इस देश का दुर्भाग्य है जिस देश में गंगा बहती है। कश्मीर शैव शास्त्र आज दो एक आश्रमों तक सीमित रह गया है।

आवश्यक यह है कि इस स्थिति पर सेमिनार में विचार किया जाये और मातृशक्ति के हेतु समस्त सुविधायें उपलब्ध कराकर उन्हें इस सांस्कृतिक सम्पदा के प्रति आकर्षित किया जाये।

कश्मीर शैवदर्शन का अध्ययन करने के हेतु अथवा शैवाचार्य बनने के लिये किसी वर्ग या वंश–सम्प्रदाय से जुड़े रहना ज़रूरी नहीं है। शिव को पहचानने के हेतु अथवा शिवमय बनने के लिये सीमा रेखाएँ पार करनी होंगी। कोई भी सचेत व्यक्ति जो किसी भी धर्म या सम्प्रदाय से जुड़ा हो शैव–शास्त्र का सचेत ज्ञाता या पण्डित बन सकता है। यह सातवें मंज़िल तक पहुँचने और सहस्रार में लय होने के लिये निरन्तर की जाने वाली साधना है। जिस का हृदयसागर उफ़न रहा है जिस के मानसरोवर में अमृत लहरें वेगवान हो, वही राजहंस बन कर मोती चुग सकता है और आनन्द अमृत कणों सें सिक्त हो सकता है। मनुष्य–केवल मनुष्य, देवताओं को भूल जाइये उन की बात नहीं हो रही है, वे तो अमृतपायी हैं अतः बार–बार सीमाओं का उल्लंघन कर रहे हैं। मैं केवल मनुष्य की बात कर रहा हूँ आज के युग में श्री एम.एच.ज़फ़्फर जैसा बुद्धिजीवी, स्वर्गीय ग़ुलाम रसूल संतोष जैसा कलाकार और 'फाज़िल' कश्मीरी जैसा भक्त कवि। हमारे गुरुजनों ने सभी संकीर्णताओं से ऊपर उठकर तथा पारदर्शी बनकर परमसत्य के साक्षात्कार के हेतु साधनात्मक जीवन व्यतीत किया है। आप चाहें अम्बूजा सीमेंट लगाकर दीवारें खड़ी करें शिव की इच्छा से सब सम हो जायेगा और सम होने की अवस्था ही 'दिव्य ज्योति का विस्तार' कहलाता है। श्री एम.एच.ज़फ़्फर के शब्दों में – 'शैव–शास्त्र के अनुसार जीवन का अन्तिम और सर्वोच्च मूल्य है – स्वयं अपनी पहचान जो मूलतः दिव्य दर्शन का पर्याय है'–

'The ultimate and supreme value in life according to saivism is self recognition which is synonymous with the vision of the truth.' (*'Kashmir Saivism: An Introduction-Research Paper'*)

मैं इसं तथ्य को भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि केवल ज्ञानं ही ज्ञान पर्याप्त नहीं। यहाँ आवश्यकता है अपनी पहचान को पाने के लिये क्रिया की। ज्ञान के साथ कर्म अनिवार्य है। कश्मीर शैवशास्त्र केवल सिद्धान्त नहीं है, इस का मानव उत्थान के हेतु एक व्यावहारिक रूप है

इस की अपनी विशिष्ट साधनात्मक प्रक्रिया है, बाहर से भीतर प्रवेश पाने की उत्तेजना है। मानसिक वृत्तियों पर अनुशासन, इन्द्रिय निग्रह, एकाक्षर ब्रह्म की पहचान, वासनात्मक जीवन पर नियंत्रण, नाद बिन्दु की समझ, घोर–अघोर की पहचान एवं गुरुकृपा पाने की उत्कट इच्छा शैव सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन के साथ जोड़ देती है।

हमारे गुरु स्वामी लक्ष्मण जू के प्रयाण के बाद इस परम्परा में ठहराव आ गया। मुझ जैसा अनपढ़ और नासमझ भक्त कैसे आज के कश्मीरी शैव पण्डितों पर विश्वास कर सकता है जिन में बुद्धि का वैभव तो है लेकिन साधनात्मक क्रिया की उष्णता नहीं है। मैं बड़ी नम्रता के साथ उनके सम्मुख निवेदन करना चाहता हूँ कि आप पुष्पित गुलाब के पौधे को सींच रहे हैं या गुलाब की पंखुरियों को? मेरी नज़र में आज एक भी कश्मीरी शैवस्कॉलर नहीं है जिस ने शैव सिद्धान्तों को व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित किया हो। मेरा अभिप्राय साधनारत शैव शास्त्री (Practising Shaiv Scholar) से है। ज्ञान की बातें सुनाने वाले बहुत हैं लेकिन सन्त स्कॉलर नदारद। अभिनव गुप्त ने 'तंत्रालोक' में यह बात स्पष्ट कर दी है–कि ज्ञान दो प्रकार का है – बौद्ध ज्ञान एवं पौरुष ज्ञान। बौद्ध ज्ञान अर्थात् चिन्तन, मनन, आत्म प्रकाश और पौरुष ज्ञान अर्थात् साधनात्मक ज्ञान। अपने आप पर प्रकटाने की अमल। सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन में अपनाने की प्रक्रिया। स्पष्ट है कि कश्मीर शैवदर्शन ज्ञान एवं क्रिया का समन्वित रूप है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सिद्धान्त को अपने ही अस्तित्व की सीमाओं के भीतर व्यवहार में लाना है। बाहर से भीतर प्रवेश कर संयम एवं निग्रह के द्वारा नियमित होकर अथवा नियमबद्ध होकर विकार रहित अथवा मलरहित (आणव मल – शरीर मल, मायीय मल – सांसारिक मायाजाल का मल, कार्ममल – प्रकृति दूषित होने का मल) कान्ति छटा से सोने के खोट को मिटाना होगा और विशुद्ध स्थिति में आकर निर्मल एवं स्वच्छ ज्ञान रश्मियों से अज्ञान के तमस को विवेक के दिव्य तेजस् में बदलना होगा। बातें तब तक निरर्थक हैं जब तक उन्हें ज़िन्दगी में व्यावहारिक रूप से अपनाया न जाये। ज्ञानयोग का अपना महत्त्व है और कर्म साधना का

अपना। जब तक दोनों एक दूसरे के साथ लय न हो जाये – शिव हो जाना तब तक सम्भव नहीं है।

इसी शिवत्व की प्राप्ति के हेतु प्रयाण से कुछ वर्ष पूर्व स्वामी लक्ष्मण जू ने इशबॅर आश्रम में जन्माष्टमी के अवसर पर 'रास लीला' रची। हमारे एक प्रोफ़ेसर बन्धु को कृष्णरूप में सजाया गया और भक्त जनों ने गोप और गोपी बन कर 'रास लीला' खेली और गुरुदेव मस्त मुद्रा में आनन्दानुभव करने लगे। यही हमारे गुरुदेव का बड़प्पन था। सोच की परिपक्वता थी और हक़ को पहचान कर लय होने की अकुलाहट।

प्रत्येक मानव के जीवन में कुछ ऐसे अमूल्य क्षण आ जाते हैं जब वह व्यापार प्रकृति को तनिक भुला कर इस सोच में पड़ जाता है कि 'मैं कौन हूँ', 'क्यों हूँ', 'यह अदृश्य क्या है', 'कौन प्रकृति का नियंत्रक है?, 'मेरा कर्तव्य क्या है?, कहीं मैं कोई ठोस सकारात्मक भूमिका निबाहने के हेतु जन्मा तो नहीं हूँ। मेरे पास कुछ अनमोल क्षण हैं क्यों न इन का सदुपयोग करूँ ताकि मर कर भी जीवित रह सकूँ। मेरे मानस के कम्प्यूटर सक्रीन पर एक–एक फ्लैश उभर कर आता है। लगता है कि कोई सूत्रधार दुनिया के मंच पर मुझे गुड्डा– गुड़िया का खेल खिलाता है। डोर उन के हाथ में है। मेरे सोच को कई उलझनें उलझा देती हैं। वे मुझ में हैं या मैं उन में। क्या 'मैं' मैं हूँ या वे स्वयं हैं। वे ही सर्वेसर्वा हैं। माटी में उत्पन्न गुलिलाला किसी गेहूँ के खेत में खिला हुआ झूम–झूम कर अपने क्षणिक और क्षुद्र अस्तित्व पर इतरा रहा है। शाम ढलते मुरझा जाता है और बोध कराता है मानव अस्तित्व की क्षण भंगुरता का। लेकिन इस गुलिलाला का व्यवहार सकारात्मक है। प्रतिदिन नई उमंग (उल्लास) के साथ खिल उठता है और हमारे कान में धीमे स्वर में कह देता है कि यदि जीवन कुछ क्षणों का मेहमान है तो भी क्या हुआ!

कश्मीर शैव शास्त्र जीवन के इसी सकारात्मक रवैये पर आधारित है जो हमें जीवन जीने और जीवन के यथार्थ को पहचानने के हेतु उत्तेजित करता है। मेरा वैराग्य से कोई लेना देना नहीं हैं। मैं तो

महान मूर्ति शिल्पी की आँगुरी कला से आकार प्राप्त कर माटी की चित्ताकर्षक मूर्ति का रूप धारण करता हूँ। मैं एक विशेष तथ्य की ओर आप का ध्यानाकर्षित करना चाहता हूँ कि कश्मीर शैवशास्त्र जीवन के सुन्दरतम पलों को बड़े चाव के साथ जीने का दर्शन है और जीवन जीते हुए आत्मबोध की प्राप्ति ही इस का ध्येय है। इस शास्त्रज्ञान के लिये न जटाएँ बढ़ाने की आवश्यकता है न संन्यास धारण करके गार्हस्थ्य ध र्म पर व्याख्यान करने की और न गुफाओं–कन्दराओं में एकान्तवास की। शैवदर्शन के आचार्य शिवपद की प्राप्ति के लिये संसार को त्याज्य नहीं बताते।

मैं अन्त में यह बात भी कहना चाहता हूँ कि 17वीं शताब्दी में माता राप भवानी के वाखों में शैव सिद्धान्तों की अनुगूँज स्पष्ट सुनाई देती है लेकिन कश्मीरी भाषा को तुच्छ समझने वाले आज के युग के शैव पण्डितों ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। ऐसा लगता है कि स्पन्द के अनुरागी वसुगुप्त से क्षेमराज तक ही सीमित रह गये हैं।

जिस प्रकार आर्यों की मूल धार्मिक पुस्तकें 'वेद' नाम से चर्चित हैं उसी प्रकार शैव मतानुयायियों के धार्मिक ग्रन्थ 'शैवागम' कहलाते हैं। 'आगम'–शास्त्र, दर्शन, ज्ञान, सिद्धान्त, तंत्रशास्त्र। वेदों को आधार मान कर आर्यों द्वारा षट् शास्त्रों न्याय (गौतम), वैशेषिक (कणाद), सांख्य (कपिल), योग (पंतजलि), पूर्व मीमांसा (जैमिनी), उत्तर मीमांसा या वेदांत (बादरायण) का विकास हुआ। शैव पण्डितों में शायद इतनी शक्ति ही नहीं थी, साहस ही नहीं था कि 'शैवागम' को सप्तम दर्शन' की मान्यता दे कर महिमामंडित करें। यह हमारा दोष है, इतिहास का नहीं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि शैवागम आर्यों के षट्शास्त्रों से बहुत आगे है। अपने आप में पूर्ण, तर्काश्रित, व्यवहारिक, ज्ञानवर्धक, व्याख्यायित, आनन्दप्रद, ज्योति–स्तम्भ, मार्गदर्शक, दिव्यज्ञान सम्पन्न और अद्भुत महिमायुक्त। दोष इतिहास का नहीं, दोष मेरा है जो आज तक मौन ध ारण कर इतिहास के भँवर में हिचकोले खाता रहा। इस प्रकार हीनत्व भावना का शिकार बन कर अपनी सांस्कृतिक सम्पदा से अपरिचित रह गया हूँ।

मुझे विश्वास है कि हर गहन तमस के पश्चात् उषा की स्वर्ण रश्मियाँ प्रकृति के धवल मस्तक का श्रृंगार करती हुई कमल की बन्द पँखुरियों को चूम लेती हैं और देखते ही देखते खिल उठते हैं आशाओं के फूल और बिखेर देते है सर्वत्र अरुणिमा युक्त मधु मुस्कान।

(5 मार्च, 2007 ई॰)

'श्री रामकृष्ण कथा अमर्यथ'- मेरी नज़र में

(मूल लेखक-श्री 'म', कश्मीरी अनुवादक-प्रोफेसर चमनलाल सप्रू)

प्रज्वलित ज्ञान जोत-उफनता अमृत स्रोत

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

(श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय–4, श्लोक–7–8)

19 वीं शताब्दी का त्रस्त, भयाक्रान्त, दासत्व की शृंखलाओं में जकड़ा ज्ञान–प्रकाश वंचित भारत तथा इस देश के करोड़ों देशवासी जिन की सांस्कृतिक सम्पदा अनिष्ट के धुधंलके में धूम्राच्छादित, श्रीहीन एवं आकर्षण विहीन हो चुकी थी, अकस्मात् पूजनीय ठाकुर की गरिमामय उपस्थिति से पुनर्जीवित हो उठी। ईश्वर वचनबद्ध हैं शोषित, अपमानित, उपेक्षित, पद्दलित और प्रताड़ित मानवता के साथ–

'अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्'

अथवा

'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'।

परम पूजनीय भगवान रामकृष्ण देव के रूप में अद्भुत अलौकिक ने एक बार फिर साकार रूप ग्रहण किया और अकस्मात् माँ शारदा ने उस अमृतकलश से वचनामृत की प्राणदायिनी स्रोत्स्विनी प्रवाहित की जिसे देवताओं से बचा कर वह शारदा में पवित्र पावन स्थल पर भूमिगर्भ में छिपा कर तथा समतल शिला से ढक कर इतिहास के झँझावातों से

बचाती रही। देश के सांस्कृतिक वैभव की पुनर्व्याख्या करते हुए प्रातः स्मरणीय पूज्य रामकृष्ण देव ने भूत की स्मृति दिलाते हुए वर्तमान से जूझने की प्रेरणा दी।

श्री रामकृष्ण के वचनामृत संगृहीत रूप में बंगला भाषा में पाँच भागों में प्रकाशित हुए। जीवन काल में अपने शिष्यों, भक्त जनों और उत्सुक दर्शनाभिलाषी आगन्तुकों से जो वार्तालाप होते थे उन्हें ही श्री 'म' (श्री महेन्द्र नाथ गुप्त) ने लिपिबद्ध किया। बाद में यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ।

बंगला भाषा में लिखित इस प्रवाहयुक्त सुधास्रोत को हिन्दी में प्रवाहित करने का श्रेय हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार स्वर्गीय पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को प्राप्त हुआ। कुछ समय के पश्चात् पुस्तक के दो खण्डों को संक्षिप्त रूप प्रदान करते हुए 'श्री राम कृष्ण वचनामृतसार' शीर्षक से एक ही खण्ड में इस का प्रकाशन हुआ।

आज हमारे लिये अत्यंत हर्ष एवं गर्व की वेला है कि ठाकुर के प्रति पूर्ण समर्पित विद्वान प्रोफ़ेसर चमन लाल सप्रू जी ने 'वचनामृत' की एक धारा को कश्मीरी भाषा के कलेवर में प्रवाहित करके दग्ध शारदाभूमि एवं शारदा वासियों को सिक्त करते हुए देवी के चरण कमलों में अटूट निष्ठा व्यक्त की है।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अनूदित साहित्य से हमारा अपना साहित्य न केवल सम्पन्न होता है बल्कि चिन्तन की नई–नई धाराएँ प्रवाहित होकर प्रेरणास्रोत के रूप में सर्जनात्मक कलाकार का दिशानिर्देशन करती हैं।

आधुनिक कश्मीरी भाषा के साहित्य की सर्वप्रमुख उपलब्धि है–गद्य साहित्य। इसकी आयु पचास–साठ वर्ष से अधिक नहीं। अनुवाद के क्षेत्र में प्रयास अवश्य हुए हैं कुछ सराहनीय भी है लेकिन इन की संख्या अधिक नहीं हैं।

मुझे आज तक भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित किसी भी क्लासिक (उत्कृष्ट, आदर्श) रचना का अनुवाद पुस्तक रूप में कश्मीरी में देखने को नहीं मिला। यद्यपि कई संस्थाएँ इस दिशा में प्रयासरत हैं

तथापि आज तक कोई ऐसी रचना हमारे सामने नहीं आई कि जिस पर हम गर्व कर सकें। कश्मीरी भाषा और साहित्य का एक समर्पित विद्यार्थी तथा शोधार्थी होने के नाते मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि प्रोफ़ेसर चमनलाल सप्रू का यह प्रयास अपनी माटी की सुगन्ध महकाता चिन्तन और अध्यात्म के क्षेत्र में नई सम्भावनाओं को अवश्य उजागर करेगा।

दृढ़ संकल्प के साथ विश्वसनीय साक्ष्यों के आधार पर कश्मीरी शैवदर्शन एवं शक्ति मत के तुलनात्मक अध्ययन की तलाश शुरू होगी और इसे सन्दर्भग्रन्थ का श्रेय प्राप्त होगा। मौलिक साहित्य सृजन की अपेक्षा किसी उत्कृष्ट रचना का अनुवाद करना अधिक दुष्कर कार्य है। यह अनुवादकर्त्ता के व्यक्तित्व की पहचान होती है। खरे और खोटे का प्रमाण, उसकी विद्वत्ता, सहृदयता और सर्जनात्मक प्रतिभा की परीक्षा। अनुवादक के लिये बहुभाषा ज्ञानी होना नितान्तावश्यक है। प्रस्तुत रचना के हिन्दी अनुवादक हिन्दी जगत के वे महापुरुष हैं जिन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा से आधुनिक हिन्दी काव्य को एक नई दिशा प्रदान की पर जिन के साथ न्याय नहीं हुआ।

प्रस्तुत रचना के कश्मीरी अनुवादक जाने–माने अध्यापक, साहित्यकार, पत्रकार एवं समर्पित श्री रामकृष्ण देव भक्त हैं पर अपनी ही मातृभूमि से निष्कासित पिछले 19 वर्षों से निर्वासन की यातना से पीड़ित। इन्हें कश्मीरी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू एवं अंग्रेज़ी भाषाओं की सम्यक् जानकारी है, सर्जन का अनुभव है, स्मृतियों का अक्षुण्ण कोश संजोये हैं, पास में – अनुभव की गरिमा है। एक तपस्वी की सहिष्णुता के साथ वर्षों साधानारत रहकर इन्होंने श्री रामकृष्ण देव को कश्मीर के केसरिया रंग में रंग लिया है। रंग चोखा है, रंग गहरा है, रंग पुख़्ता है, रंग शोख़ है, रंग खरा है और यही कश्मीरियत की पहचान है। इस अनूदित रचना में श्री रामकृष्ण देव का ज्ञान गरिमामय व्यक्तित्व बिल्कुल निखर उठा है।

कश्मीरी भाषा में कई अनूदित रचनाएँ आ गई हैं लेकिन भारतीय संस्कृति के इस गरिमामय अजस्र अमृत स्रोत से आज तक

किसी ने अपनी प्यास बुझाने की चेष्टा नहीं की थी। इस रचना के द्वारा महाप्रभु का शुभ प्रवेश हमारे घरों में होगा और हम अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित होकर शक्ति उपासक प्रभु श्रीरामकृष्ण देव की अलौकिक विभूतियों की शुभ्रछटा से प्रफुल्लित हो उठेंगे। निस्सन्देह प्रोफ़ेसर चमन लाल सप्रू बधाई के पात्र हैं।

लगभग चार सौ पृष्ठों की इस महत्त्वपूर्ण रचना में जीवनानुभवों की विविधता है, आत्मचिन्तन की उष्णता है। समर्पण और विश्वास की निश्चिन्तता है, साधनात्मक जीवन की संकल्पबद्ध, दृढ़ता है और निष्कामकर्म साधना की लगन है।

अन्‌दित रचना का नाम है **'श्री रामकृशण कथा अमर्‌यथ'।** प्रभु राम कृष्ण देव के सम्मुख जीव का महत्त्व है। सब समान हैं, दिशाएँ भिन्न–भिन्न परन्तु लक्ष्य एक है। अतः हिन्दू, मुसलिम, ईसाई, बौद्ध, सिक्ख, श्रेष्ठ, निकृष्ट, अवर्ण या सवर्ण उन के लिये निरर्थक शब्दप्रयोग हैं। यह सन्देश आज के भारत के लिये विशेष कर बन्दूकियों से ग्रस्त और त्रस्त कश्मीर तथा कश्मीर वासियों के लिये संजीवनो सिद्ध हागा–यही मेरा विश्वास है।

अनुवाद करते समय सप्रूजी ने बुनियादी बातों को अवश्य ध्यान में रखा है। महकते पुष्प के रूपाकार को सुवाससहित कश्मीरी भाषा में महकाने का श्रेय उन्हें है। अनुवादक की अपनी सीमाएँ हाती हैं। अनुशासित होकर मूल में परिवर्तन किये बिना कथ्य को रूपान्तरित करना उस का ध्येय हाता है। वे स्वयं क्या चाहते हैं – इस का अनुवाद में कोई महत्त्व नहीं। कभी–कभी एक–एक शब्द को रूपान्तरित करते समय घण्टों बीत जाते हैं, कभी उपयुक्त शब्दप्रयोग को तलाशने में महीनों का समय लग जाता है। कभी–कभी कई प्रयास करने पर भी अनूदित रूप अर्थ अभिव्यक्ति में असमर्थ दिखाई देता है। कभी शब्दों के तत्सम रूप को व्यवहार में लाने से कथ्य प्रषणीय बन जाता है और कभी शब्दों के तद्‌भव रूप से अभिव्यत्कि का सौन्दर्य निखर उठता है, प्रोफ़ेसर सप्रू ने इन समस्त मूलभत् आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए साधनारत होकर कर्तव्यकर्म का निर्वाह किया है।

इस अनूदित कृति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि विद्वान बन्धु ने भारतीय संस्कृति से जुड़े विशेषकर हिन्दू लोकाचार (Ethos) से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों को यथासम्भव उन के तत्सम रूप में ही कश्मीरी भाषा में प्रस्तुत किया है। ऐसा करने से दो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य सिद्ध हुए हैं–

(1) रचना के सांस्कृतिक सुवास की यथासम्भव रक्षा हो सकी है। वेद–उपनिषद् और पुराणों में प्रवाहित ज्ञान स्रोत की अजस्रधारा प्रस्तुत रचना में भी प्रवाहित होकर मन मस्तिष्क को सिक्त कर रही है।

(2) इस प्रकार की तत्सम शब्दावली के प्रयोग से कश्मीरी भाषा की शब्द सम्पदा में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। विदेशी भाषाओं की शब्दावली से बोझिल कश्मीरी भाषा में हज़ारों–हज़ारों वर्ष पुराने सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक और अर्द्ध ऐतिहासिक पात्रों, घटनाओं, चिन्तन पद्धतियों, विश्वासों और मान्यताओं से सम्बन्धित शब्दावली ने कश्मीरी भाषा को भी गरिमामय बना दिया है।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:–

(1) श्री राम कृष्ण..........ईश्वर मार्ग के पथिक चार प्रकार के होते हैं–प्रवर्तक, साधक, सिद्ध और सिद्धों में सिद्ध–(पृ॰ 41) ईश्वरुँ, सुँज़िवति पकन वॉल्य छि च़ोरि प्रकार्य, आसान– प्रवर्तक, साधक, स्यद, त स्यदन मंज़ स्यद। (पृ॰ 65)

(2) (नरेन्द्र के गीत का आशय) 'चिदाकाश में पूर्ण प्रेमचन्द्र का उदय हुआ। (पृ॰ 46)
च्यत किस आकाशस मंज़ छु प्रेयम च़न्द्रम वोदयस आमुत।

(3) श्रीरामकृष्ण– 'मैं साकारवादियों के निकट साकार हूँ और निराकारवादियों के निकट निराकार'। (पृ॰ 52)
'ब छुस साकार वॉदियन निशि साकार तुँ निराकार वादियन निशि निराकार'। (पृ॰ 77)

(4) श्री रामकृष्ण– 'वेदान्तवादी ब्रह्म ज्ञानी कहते हैं सृष्टि, स्थिति, प्रलय, जीव, जगत यह सब शक्ति का खेल है। (पृ॰ 58) 'वेदांतवॉदी

ब्रह्मज्ञॉनी छि वनान सृष्टि, स्थिति, प्रलय, जीव, ज़गत यि सोरुय छु शक्ति हुन्द खेल'। (पृ॰ 83)

(5) श्री रामकृष्ण– 'रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। उन के गुरु थे अद्वैतवादी'। (पृ॰ 62)

'रामानुज ओस विशिष्ट अद्वैतवादी। तिहुंद ग्वर ओस अद्वैतवादी'। (पृ॰ 88)

अनूदित ग्रन्थ में भाषानुवाद के अत्यन्त सुन्दर रूप सोने की अँगूठी में नगीने के समान चमकते दिखाई देते हैं। अनुवादक महोदय ने ऐसे आकर्षक शब्द–प्रयोगों के द्वारा शब्दों की अन्तरात्मा को पहचानने की क्षमता, ऐतिहासिक जानकारी एवं लोक मर्यादित संस्कृति –बोध का परिचय दिया है। भारतीयता और कश्मीरियत का यह अद्‌भुत संगम–गंगा जमुनी संस्कृति में कश्यपमर के पाँच सहस्र वर्ष प्राचीन सांस्कृतिक वैभव के आदि स्रोत को खोजने की प्रेरणा देता है।

कुछ उदाहरण देखने योग्य हैः–

पृ॰ 99 –जी हाँ (कश्मीरी अनुवाद) आहनमाहरा–पृ॰ 128

पृ॰ 113 –छोटी–छोटी मछलियाँ (कश्मीरी अनुवाद) गुरन–पृ॰ 143

पृ॰ 131 –आप कैसे हैं? (कश्मीरी अनुवाद) वारय छिव?–पृ॰ 161

पृ॰ 137 –परन्तु उन के दर्शन होने पर (कश्मीरी अनुवाद) अमापोज़ तिहुन्द दर्शन सपदान–पृ॰ 168

पृ॰ 6 –पाण्डित्य (कश्मीरी अनुवाद) पँडितॉज़ – पृ॰ 6

पृ॰ 14 –अतिथि शाला (कश्मीरी अनुवाद) पॅछ़्य गर–पृ॰ 14

पृ॰ 13 –भोजन की खोज (कश्मीरी अनुवाद) ओज़ुक छ़ारनि–पृ॰ 35

पृ॰ 15 –कपड़े के खूँट में बाँधकर (कश्मीरी अनुवाद) त गोंडनस लोंचि–पृ॰ 37

पृ॰ 14 –कामिनी कांचन (कश्मीरी अनुवाद) कामिनी त कांचनस (सोनस त सोन्दरन) –पृ॰ 36

पृ॰ 17 –नेत्र निर्निमेष (कश्मीरी अनुवाद) ॲछ़्यन टिटराय ति रूज़िथ गॉग़च – पृ॰ 37

पृ॰ 128 –सिर बड़ा है, ललाट ऊँचा (कश्मीरी अनुवाद) कल छुस बाड

त ड़्यक ति वोगुन – पृ. 47

पृ. 35 –श्री रामकृष्ण (हँसमुख) (कश्मीरी अनुवाद) श्री रामकृष्ण (असवनि होंजि) –पृ. 60

पृ. 35 –श्री रामकृष्ण (सहास्य) (कश्मीरी अनुवाद) श्री रामकृष्ण (असवुनि रोयि) –पृ. 60

पृ. 50 –मन्दिर में विराजमान (कश्मीरी अनुवाद) मन्दरस मंज़ श्रीमान पॉद्य बिहित –पृ. 75

पृ. 68 –ऊर्ध्व दृष्टि (कश्मीरी अनुवाद) ह्योर कुन छि मुदय गँडिथ –पृ. 95

पृ. 161 –भगवद् भावोन्मत्त अवस्था (कश्मीरी अनुवाद) दयि लोलस मंज़ मगन –पृ. 194

कश्मीरी साहित्य में गद्य अभी भी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में है और 'श्री रामकृष्ण कथा अमर्यथ' नामक ग्रन्थ गद्य लेखकों को विषय एवं चिन्तन की नवीन सम्भावनाओं से परिचित कराते हुए अभिव्यक्ति की मौलिक उद्भावनाओं से भी दीप्त करेगा।

'श्री रामकृष्ण वचनामृत' की उपलब्धियों पर कई ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। मैं यहाँ केवल पाँच विशेषताओं की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ जो कश्मीरी अनुवाद 'श्री रामकृष्ण कथा अमर्यथ' के माध्यम से प्रमुख रूप से उभर कर सामने आई हैं तथा जो कश्मीरी पाठक समुदाय के लिये भी अमृततुल्य वरदान सिद्ध होंगी।

पाँच वि□शताएँ:–

(1) प्रभुराम कृष्ण देव को युवा शक्ति पर अटूट विश्वास था कि युवा मानस जब सही दिशा में सक्रिय होगा, नवीन सम्भावनाओं की तलाश स्वयमेव आरम्भ होगी और अर्द्धमृत भारतीय समाज में खोने की नहीं अपितु जीने की तमन्ना जाग उठेगी।

सर्वश्री नरेन्द्र, राखाल, भवनाथ, रामलाल, हाजरा, सुरेश, बलराम, मणिलाल मल्लिक, विजय, लाटू आदि भक्त जन जीवन के उषा काल में ही उन के तेजस्वी व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित हुए थे क्योंकि उन्हें युवा शक्ति में स्वर्णिम भविष्य की आभा प्रतिबिम्बित दिखाई देती थी,

इन्हीं अर्द्ध प्रस्फुटित गुँचों से स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी ब्रह्मानन्द जैसी विभूतियाँ खिल उठीं जिन्होंने सम्पूर्ण वाटिका को महका दिया।

(2) प्रभु रामकृष्ण देव अनुभूत सत्य के आधार पर आत्म चिन्तन की गहराइयों से अनमोल मौक्तिक टटोल कर अपने समर्पित विश्वसनीय भक्त जनों पर निछावर करते थे। वे भौतिक रिश्तों से बहुत ऊपर उठ कर सामान्य मानव सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में अपनी वाणी का वरदान देते हैं। यहाँ हिन्दू– अहिन्दू, अमीर–ग़रीब, छोटा–बड़ा, अशक्त–सशक्त, साधनहीन और साधनसम्पन्न के अन्तर का कोई महत्त्व नहीं। यह तो आत्मचिन्तन और मनन के आधार पर आत्मानुभूत सत्य की मुखर अभिव्यक्ति है।

(3) प्रभुराम कृष्ण देव गायन कला में निपुण थे। इतना ही नहीं गायन के साथ–साथ वे बहुधा नृत्य करते थे। विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं और भावभंगिमाओं के द्वारा अपने आन्तरिक अनुभूत को व्यक्त करते थे। स्वर्गीय पण्डित कृष्ण जू राज़दान कश्मीरी सन्त और कृष्ण भक्त कवि भी स्वयं कीर्तन करते थे और भावावेश में नृत्यमग्न हो जाते थे। श्री रामकृष्ण देव ने संगीतविद्या को सर्वश्रेष्ठ गुण मानते हुए कहा है – 'जिस मनुष्य में कोई एक बड़ा गुण है – जैसे संगीत विद्या, उस में ईश्वर की शक्ति विशेष रूप से वर्तमान है।'

('श्री रामकृष्ण वचनामृत'–प्रथम भाग–पृ॰ 52)

(4) श्री राम कृष्ण देव श्रीमद्भगवद् गीता के निष्काम कर्म सिद्धान्त से प्रेरित प्रभावित थे। गीतासार को अपने व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करने के हेतु वे दृढ़ संकल्प थे। बहुधा भक्त जनों के सम्मुख विचार रखते हुए वे गीता जी से मार्मिक तथ्य कथन एवं विवेकाश्रित जीवन सिद्धान्त ग्रहण कर उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने का प्रयास करते रहते हैं।

'बारह सौ 'भगत' और तेरह सौ 'भगतिन' वाली कहावत पर विचार करते हुए श्री रामकृष्ण देव कामिनी–कांचन के लिए जीव की तृष्णायुक्त प्रकृति पर विचार करते हुए कहते हैं– 'कामिनी कांचन जीव को बान्ध लेते हैं। जीव की स्वाधीनता चली जाती है। कामिनी से ही

कांचन की आवश्यकता होती है।'

('श्रीमद्भगवद्गीता' अध्याय–2, श्लोक–71)

'विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।'

(5) श्री रामकृष्ण देव के व्यक्तित्व की यह विशेषता रही है कि वे संक्षेप में, कभी–कभी सांकेतिक रूप में, धीमा सा संकेत करके बहुत गहरी बात कह देते थे। संक्षिप्त रूप में विचाराभिव्यक्ति में वे निपुण और समर्थ थे। स्वर्गीय निराला ने श्री रामकृष्ण देव की इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए 'देखन में छोटे लगे घाव करें गम्भीर' वाली उक्ति को चरितार्थ किया है। प्रोफ़ेसर सप्रू जी ने कश्मीरी में अनुवाद करते–करते ऐसे संक्षिप्त वाक्त प्रयोग किये हैं जो अनूदित रचना के रचना– सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते हैं।

कुछ उदाहरण देखन्ने. योग्य हैं:–

(1) 'दयि लोलुक तील अथन मॅथिथ गछ़ि समसार रूपी कटहलस कुन अथ न्युन' – पृ॰ 29

(2) 'बद्ध ज़ीव छि संसारस मंज़ सोनस त सोन्दरन (कामिनी त कांचनस) लॉर्य राज़ान'। पृ॰ 36

(3) 'मरुन गछ़ि हमेशि स्वरुन' – पृ॰ 55

(4) 'ब त म्योन – यिम दोशवय छि अज्ञान' – पृ॰ 55

(5) ईश्वर संदि चेतनायि सत्य छु ज़गत चेतनामय।

कुनि कुनि छुस वुछान ज़ि ल्वकचन ल्वकचन गाडन (गुरनन) मंज़ छु सुय चैतन्य गिंदान' – पृ॰ 143

(6) श्री रामकृष्ण–'च़मि हंज़व चॅशमव छुन कांह ति वुछिथ ह्यकान – पृ॰ 65

(7) श्री रामकृष्ण – 'पूरन ज्ञान प्रॉविथ छु मनोश छ़ाप (खामोश) सपदान। तेलि छु 'ब' रूप नून टुल सत्‌चित्‌ आनन्द रूपी समन्दरस मंज़ गॉलिथ कुनुय सपदान'। पृ॰ 96

(8) श्री रामकृष्ण – 'समसॉर्य ज़ीव, गॅडिथ ज़ीव, यिम छि रीशिम क्यम्य'। पृ॰ 131

मैं कुछ ऐसे भी उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ जहाँ मैं अनुवादक से सहमत नहीं हो सका। यदि मुझे अनुवाद करना होता तो मैं इस प्रकार अपनी क्षमता के अनुसार–भाषा प्रयोग करता:–

पृ. 32 – अँछन ब्रोंह कनि हमेशि सुय आनन्दुक रफ

(अँछन ब्रोंह कनि हमेशि सुय आनन्दुक रूप)

पृ. 34 – 'अँकिस जंगलस मंज़ ऑस्य कंह गुपन रॉछ्यदर गॉवन गास ख्यावान

(अँकिस जंगलस मंज़ ऑस्य कंह पँहॉल्य गॉवन गास ख्यावान)

पृ. 36 – 'बद्ध ज़ीव छि संसारस मंज़ कामिनी त कांचनस लॉर्य् रोज़ान'।

(बद्ध जीव छि संसारस मंज़ सोनस त सोन्दरन लॉर्य् रोज़ान)

पृ. 43 – (हिन्दी) वे पूछँ के नीचे हाथ लगा कर परखते हैं। (पृ. 21)

(कश्मीरी) तिम छि लॅटिस तल कनि थफ कॅरिथ च़र्चान

(तिम छि लॅटिस तल कनि अथ लॉगिथ च़र्चान)

(हिन्दी) इतने दिन खाई, सोता और अधिक से अधिक हुआ तो नदी देखी (पृ. 25)

पृ. 48 यीत्यन दोहन (म्यूलुस) क्ररेन, नागरादन त बाड बडीम वुछ क्वल

(यीत्यन दोहन (म्यूलुस) ख्यन, नागरादन त बाड बडीम वुछ क्वल)

पृ. 57 (हिन्दी) 'जिन्हें ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, योगी उन्हीं को आत्मा कहते हैं और भक्त उन्हें भगवान कहते हैं। (पृ0 57)

(क) यिमन ज्ञानी ब्रह्म छि वनान, यूगी छि भगवान वनान

(यिमन ज्ञानी ब्रह्म छि वनान, यूगी छि तिमनई आत्मा वनान त भॅख्त छि तिमन भगवान वनान)

छिद्रान्वेषण आलोचना नहीं है, सम्भव है यह इस का समकालीन जीवन में व्याप्त विसंगतियों से उत्पन्न आक्रोश का विवेकहीन प्रकटीकरण हो। यह भी सम्भव है कि यह हमारी नज़र का ही दोष हो। देखना यह

है कि एक नई दिशा में किया गया प्रयास किस हद तक नवीन सम्भावनाओं को उजागर करता है।

केवल यह कहना कि बस यही सही है पर्याप्त नहीं है। 'यह भी सम्भव है' – एक स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचायक है। सम्भवानायें नई दिशाओं को रेखांकित करती हैं। प्रोफ़ेसर सप्रू जी का यह प्रयास सराहनीय है और अनुवाद की दिशा में एक मीलपत्थर साबित होगा। इस अनुवाद में विदेशी भाषा व्यवहार के कागज़ी फूलों की चकाचौंध करने वाली छटा नहीं, स्वदेशी शब्द प्रयोगों का आकर्षण है, देसी गुलाबों की महक है और फुलवारियों (पुष्पवाटिकाओं) से दूर खेतों में हुए कंपायमान गुलेलालः की चमक।

(21 मार्च, 2005 ई॰)

अब्दुल अहद 'आज़ाद' (1903-1948 ई.)
युगीन जीवन के प्रति सचेत कश्मीरी कवि

स्वर्गीय अब्दुल अहद 'आज़ाद' आधुनिक कश्मीरी साहित्य के उन प्रतिष्ठित साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में युग–चेतना को काव्य वाणी प्रदान करते हुए सामान्य जन के स्वेदकणों में सौन्दर्य को तलाशने का सफल प्रयास किया है। सर्वप्रथम वे 'अहद' फिर 'जानबाज़' कविनाम से श्रृंगारपरक रचनाएँ लिखते थे लेकिन पुत्र शोक ने उन्हें हर बन्धन से आज़ाद किया और वे 'आज़ाद' कविनाम से सर्जन कार्य में जुट गये तथा अंत तक इसी नाम से लिखते रहे।

विकट परिस्थितियों से जूझना ही आज़ाद के भाग्य में था। 45 वर्ष की अल्पायु में ही आज़ाद जवानमर्ग हो गये। जो अपने जीवनकाल में बड़े उत्साह के साथ क्रान्ति और विद्रोह के नग़मे गा रहा था उसी के अचानक खामोश हो जाने पर कविवर 'महजूर' ने शोक व्यक्त करते हुए लिखा–

'आह! आज़ाद अज़ जहान रोपोश शुद
याकि अज़ जामि बक़ा मदहोश शुद
बहरहाल रहलतश महजूर गुफ्त
बुलबुल शीरीन बयान खामोश शुद।'

आज़ाद ने एक महान कर्मवीर के रूप में संकटपूर्ण स्थितियों का सामना किया और निरंतर कर्मसाधना में लीन रहकर कर्म को ही वस्तुतः धर्म का भव्य रूप समझा। उन के चिन्तनपरक कई समकालीन

विचारधाराओं और प्रतिभासम्पन्न विद्वत्जनों का अवश्य प्रभाव पड़ा है। वे जहाँ कार्लमार्क्स के समाजवादी चिन्तन से प्रभावित हुए वहाँ महाकवि इक़बाल के व्यक्तित्व एवं सर्जनात्मक प्रतिभा की छाप भी उन पर पड़ी। लेकिन ये प्रभाव उन्होंने एक निश्चित् सीमा तक ही ग्रहण किये हैं। उन की रचनाओं का गहन अध्ययन करने के पश्चात् यह बात स्पष्ट होती है कि सर्वाधिक और महत्त्वपूर्ण प्रभाव उन्होंने युगीन जीवन से ग्रहण किया।

शताब्दियों से चली आ रही परतंत्रता, पूंजीवादी व्यवस्था में शोषण का दमनचक्र, सर्वत्र व्याप्त भुखमरी, धर्मान्धता एवं अज्ञान तथा ज़मींदारी प्रथा के हाहाकार ने आज़ाद को हुस्न–इश्क़ के रंगमहल से नीचे उतार कर तथा ठोस धरती पर पैर जमाकर जीवन के बीभत्स यथार्थ को देखने और सहन करने के लिये विवश किया। वे मानव को उस के विशुद्ध मानवीय रूप में देखने के लिये व्यग्र हो उठे और अंत में जब सहन शक्ति के बान्ध टूटने लगे तो उन्होंने क्रान्ति का आह्वान पूरे साहस, संकल्प, दृढ़ता और आत्मविश्वास के साथ किया।

1. कश्मीरी भाषा में लिखित आज़ाद की कुछ कविताएँ 'संगरमाल' शीर्षक से सात पुस्तिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।
2. सन् 1959 ई॰ में प्रोफ़ेसर पृथ्वीनाथ 'पुष्प' ने इन की प्रतिनिधि रचनाओं का उर्दू अनुवाद सहित एक लघु संग्रह तैयार किया जो जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से उसी वर्ष प्रकाशित भी हुआ।
3. सन् 1967 ई॰ में अकादमी की ओर से 'कुल्लियाति आज़ाद' का प्रकाशन हुआ, जिस का सम्पादन आज़ाद के एक अतंरंग मित्र एवं शुभचिन्तक डॉ॰ पद्मनाथ गँजू ने किया। कुशल चिकित्सक होने के साथ–साथ डॉ॰ गँजू एक अनुभवी आलोचक और साहित्य प्रेमी. भी थे। पाठालोचन के सिद्धान्तों के आधार पर डॉ॰ गँजू ने आज़ाद की 244 रचनाओं को कुल्लियात में पेश किया। इन में मुख्य रूप से गज़लें, नज़्में, रुबायात, क़तात और लम्बी विचारप्रधान कविताएँ शमिल हैं। पुस्तक के आरम्भ में

उन्होंने कवि के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित 141 पृष्ठों की विस्तृत भूमिका लिखी है जो वर्णनात्मक अधिक और आलोचनात्मक कम है। 637 पृष्ठों का यह संग्रह ग्रन्थ शोध की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। आज़ाद की कई ऐसी रचनाएँ भी प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत हैं जो सन् 1967 ई॰ तक कभी प्रकाशित नहीं हुई थीं।

काव्य लेखन के प्रयोग काल में उन्होंने विशुद्ध श्रृंगार–परक रचनाएँ लिखीं। विकास काल में एक नये सोच और चिन्तन से प्रभावित होकर देशप्रेम की अग्नि उनके हृदय में दहक उठी और एक मानवतावादी कवि के रूप में वे जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट करने लगे। जीवन की सार्थकता का रंग उनकी रचनाओं में गहराने लगा। उत्कर्ष काल में उन की रचनाओं में क्रान्ति का स्वर मुखर हो उठा। आमूल परिवर्तन लाने के हेतु वे नाश और निर्माणं का समान रूप से स्वागत करने लगे। यह सही है कि आज़ाद पर प्रगतिवादी चिन्तन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है लेकिन साम्यवादी विचारधारा से कहीं अधिक 'आज़ाद' अपने देश की माटी से जुड़ा था।

'आज़ाद' न केवल एक कवि थे अपितु आधुनिक युग में कश्मीरी भाषा एवं साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक एवं शोधकर्ता भी थे। अपने शोध निष्कर्षों के आधार पर उन्होंने उर्दू भाषा में कश्मीरी साहित्य का इतिहास लिखा जो उन की मृत्यु के पश्चात् 'कश्मीरी ज़बान और शाइरी' शीर्षक से तीन भागों में राज्य की कल्चरल अकादमी द्वारा क्रमशः सन् 1959, सन् 1962 और सन् 1963 में प्रकाशित हुआ। इस इतिहास के लेखन में उन्हें 13 वर्ष (1935–1948 ई॰) लगे हैं।

'आज़ाद' स्वयं ग्रामवासी थे अतः ग्रामीण जीवन में व्याप्त सचाई और सादगी ही इन के 'लोल' (श्रृंगार परक रचनाओं) गीतों का प्रमुख आकर्षण हैं। मैं यह भी स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ कि आज़ाद ने इश्क़–इलाही की बात नहीं की। बहुत समय बीत चुका था – ये बातें सुनते और सुनाते। उन्हें विश्वास था कि प्रेम जीवन की एक अनिवार्यता है। प्रेम ही जीवन्त होने का लक्षण है और अपने अस्तित्व को पहचानने

का सशक्त साधन। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज़ाद को जीवन जीने में अटूट विश्वास था।

'लोल' (प्रेम) का व्यवहार आज़ाद ने पूरे लोल के साथ किया है। डॉ॰ पद्मनाथ गँजू के कथनानुसार 'इसे तसव्वुफ़ की ज़ंजीरों से आज़ाद कर के एक स्वस्थ भौतिक आधार प्रदान किया है। संगीत के स्वर से सुरला बना दिया है ... और लोल को माधुर्य से भी सिक्त कर दिया।' *(कुल्लियाति आज़ाद– प्रस्तावना– डॉ॰ पदमनाथ गँजू–पृ॰ 54)*

इंसान और इंसानियत के खण्डित रूप ने कवि को मनुष्य के भौतिक अस्तित्व पर तनिक गहराई के साथ सोचने के लिये विवश किया फलतः रसमय अनुभूति का स्थान तर्कमय विचार ने ले लिया और मानवतावादी चिन्तन उन की रचनाओं में प्रबल रूप से व्यक्त होने लगा। मानव प्रेम की मदिरा पी कर आज़ाद मस्त है, बदमस्त नहीं। उनका मानव प्रेम विश्व बन्धुत्व की सीमाओं को छूता हुआ मूलतः उन के स्वस्थ और परिपक्व चिन्तन का आभास देता है।

'आज़ाद' के काव्य व्यक्तित्व का तीसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है देशप्रेम की ज्वाला से तप्त क्रान्तिकारी कवि का व्यक्तित्व। आजाद की नज़र में इंसान का महत्त्व है हिन्दू और मुसलमान का नहीं। हिन्दू और मुसलमान बनने से पहले एक सच्चा इंसान बनना नितान्तावश्यक है। इंसान की सोच में इसी बदलाव का नाम क्रान्ति है। आज़ाद जनमानस की चिन्तनपद्धति में एक स्वस्थ वैचारिक क्रान्ति लाना चाहते थे।

आज़ाद ने कुछ विचार प्रधान लम्बी कविताएँ भी लिखी हैं। 'दरियाव' (दरिया) आज़ाद की एक बहुचर्चित नज़्म है जिस में मानवीकरण के द्वारा दरिया अपने प्रवाहमय जीवन को एक नये उत्साह–वर्धक सन्देश और अर्थ के साथ व्यक्त करता है। जीवन का अर्थ है – सवेग प्रवाह जिस में ठहराव के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। दरिया के समान पीछे मुड़ कर कभी न देखने में ही जीवन की सार्थकता है। ठहराव मृत्यु का लक्षण है। 'संघर्ष प्रधान आज' में ही 'सुखद कल' के बीज निहित हैं। इस लिये दरिया अपने प्रवाह की मस्तानी चाल में मनुष्य से पूछता है–

'म आदत छुय न पथ फरुन
म निश गव ब्रांह कुनुय नेरुन

हिन्दी अनुवादः

'मेरी आदत नहीं पीछे मुड़ना,
मैं तो केवल आगे बढ़ता हूँ।'

महाकवि इकबाल के 'जावेद नामा' में संगृहीत नज़्म 'नाल–ए–इबलीस' से प्रेरित होकर आज़ाद ने एक लम्बी नज़्म 'शिकव–ए–इबलीस' लिखी है जिस में बदनाम इबलीस सर्वशक्तिमान दैव के सम्मुख अपना आर्त्तनाद पेश करते हुए कहता है कि सृष्टि पर सौ–सौ राक्षस देखकर तथा उन की हिंसा वृत्ति से भयभीत होकर मैं भी कांप उठा हूँ।

आज़ाद के काव्य में प्रकृति–चित्रण का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। 'पाँचादर' (झरना), 'शीन मॉन्य' (हिमनद), 'बहार' तथा 'सोंथ आव' (बसन्त आया) इस दृष्टि से उन की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

आज़ाद जनमानस की चिन्तन पद्धति में भी एक स्वस्थ वैचारिक क्रान्ति लाना चाहते हैं। वे एक नये विश्वास के साथ नवनिर्माण हेतु रुग्ण व्यवस्थाओं पर कुठाराघात करते हैं। इस दृष्टि से उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं – 'पयाम इंक़लाब' (सन्देश क्रान्ति का), 'इंक़लाब', 'इंक़लाबो इंक़लाबो इंक़लाब', 'इंक़लाब अन इंक़लाब' आदि। केवल बाह्य जीवन अथवा राजनीतिक–सामाजिक व्यवस्थाओं में ही क्रान्ति की आवश्यकता नहीं अपितु मानव सोच में, मान्यताओं और जीवन मूल्यों में क्रान्ति अपेक्षित है। अभिशाप ग्रस्त जीवन में व्याप्त जड़ता को भंग करने के लिये तथा देशवासियों में आत्मसम्मान की भावना को जगाने के हेतु क्रान्ति आवश्यक है। परम्परागत रूढ़ एवं रुग्ण मान्यताएँ टूट–टूट कर बिखर जायें, अन्धविश्वासों की बेडियाँ झनझना उठे, व्यवस्थाओं के बाह्यावरण छिन्न–भिन्न हो जायें, तर्क बुद्धि सक्रिय हो उठे–आज़ाद इस प्रकार के परिवर्तन के लिये क्रान्ति और विद्रोह का शंखनाद करते हैं–

'नाव चे इंसान छुय ह्यान्द त मुसलमान क्या
ह्यांद त मुसलमान याद नाव च़ इंसान क्या
रिन्द पनन्य ज़िन्दगी क्याज़ि थॉवथ दर–अज़ाब
यी छु वनान इंक़लाब ॲथ्य छि वनान इंक़लाब।।'

हिन्दी अनुवादः

'यदि नाम तेरा इंसान है फिर हिन्दू और मुसलमान क्या है
यदि हिन्दू और मुसलमान है तो फिर इंसान क्या है
मनमौजी! तुम ने निज जीवन को संकट में क्यों डाला
यही इंक़लाब कहता है और इसे ही इंक़लाब कहते हैं।'

–'आज़ाद'

(21 जून, 2008 ई॰)

'शाप' : प्राचीन कश्मीर इतिहास का अविस्मरणीय अध्याय

(नाटककार मोतीलाल क्यमू की अद्‌भुत प्रस्तुति एक पाठक की नज़र में)

मै खुले दिल से श्री मोतीलाल क्यमू को बधाई देना चाहता हूँ कि उन्होंने कश्मीर इतिहास के एक उपेक्षित, विस्मृत तथा तिरस्कृत पृष्ठ को पुनः जीवनदान देते हुए हमें अपने विगत इतिहास को जानने, समझने और पहचानने की प्रेरणा दी है।

पौराणिक – ऐतिहासिक नाटक 'शाप' का प्रमुख आधार प्राचीन कश्मीर–इतिहास का एक आविस्मरणींय घटनाचक्र है। सूत्रधार इस की सूचना देते हुए विदूषक से कहते हैं–'सुन! नाटककार ने इस नाटक के सूत्र 'नीलमत पुराण', 'राजतरंगिणी' और 'पदम पुराण' से लिए हैं और फिर व्याख्या अपने ढंग से की है। समझा?' (पृष्ठ–126) जाने क्यों परवर्ती इतिहासकारों ने महाभारत युद्ध से पूर्व कश्मीर के प्रतापी राजा गोनन्द और ब्रज प्रदेश के यादवों के पारस्परिक युद्ध का विशद् उल्लेख नहीं किया है। इतिहास के सत्य को जानबूझ कर कम्प्यूटर के डस्टबिन में डाल दिया गया।

राजा गोनन्द प्रथम – समय 653 कलियुग, मगध सम्राट जरासन्ध एवं मथुरा के राजा कंस के समकालीन थे। कल्हण पण्डित का मानना है कि गोनन्द जरासन्ध के सम्बन्धी थे अतः जब जरासन्ध यमुना नदी के तटीय प्रदेश में श्रीकृष्ण के नेतृत्व में लड़ रहे यादवों के विरुद्ध संघर्षरत थे तो गोनन्द पर्याप्त सेना लेकर जरासन्ध को उत्साहित

करने हेतु – 'आ बैल मुझे मार' कहावत को चरितार्थ करते हुए श्रीकृष्ण से युद्ध भूमि में उलझ गए और कृष्ण के बड़े भाई बलराम के हाथों मारे गए।

गोनन्द प्रथम के देहान्त के बाद उन का अनुभवहीन पुत्र दामोदर प्रतिशोध के हेतु व्यग्र हो उठा। उस ने यादवों पर तब दावा बोल दिया जब वे गान्धार नरेश की पुत्री के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये सिन्धु देश में आये थे। दामोदर वीर योद्धा था इस में कोई सन्देह नहीं है पर श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र के सामने उस की एक न चली और मारे गये। तब उन की पत्नी यशोवती गर्भावस्था में थीं। श्री कृष्ण के परामर्श से ही यशोमती को महारानी घोषित करके रण–आहत सेना कश्मीर लौट आई। निश्चित समय पर गोनन्द–द्वितीय का जन्म हुआ। कुछ समय व्यतीत होने के बाद अल्पायु में ही उन्हें कश्मीर का राजा घोषित किया गया। महाभारत युद्ध के समय किसी भी पक्ष (कौरव, पाण्डव) ने उन से सहायता नहीं ली क्योंकि वे अभी अल्पायु के थे।

श्री पृथ्वीनाथ कौल बामज़ई ने अपनी पुस्तक "A History of Kashmir" (1962 ई॰) के पृष्ठ 60–61 पर इतिहास के इस घटनाचक्र का उल्लेख अवश्य किया है पर पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध न होने के कारण वे सप्रमाण विस्तार के साथ घटनाओं में परस्पर तारतम्य स्थापित नहीं कर सके हैं। वे परवर्ती युग के इतिहास को महिमामंडित करने में अधिक रुचि रखते थे। यह भी कहा जा सकता है कि वे प्राचीन इतिहास या प्रागैतिहासिक काल के विज्ञ पण्डित नहीं थे। इतर जातियों के इतिहासकारों से इस प्रकार के इतिहास लेखन की आशा दूर की बात थी।

'शाप' नाट्‌य (नाट्य) रचना के सृजन हेतु कुशल नाटककार क्यमू साहब ने इस कथासूत्र को ग्रहण किया और अपनी समझ, सर्जनात्मक प्रतिभा एवं विवेकबुद्धि के आधार पर बिखरे हुए कथासूत्रों को समेट कर क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। 'रंग–राजतरंगिणी' पुस्तक में क्यमू साहब के दो कश्मीरी नाटक 'नगर वादॉस्य' एवं 'शाप' हिन्दी भाषा में अनूदित होकर 2007 ई॰ में प्रकाशित हुए। 17 अप्रैल 2008 ई॰ के दिन इस पुस्तक का भव्य विमोचन जम्मू में हुआ।

'रंग—राजतरंगिणी' कान्ती पब्लिकेशन्स दिल्ली—53 द्वारा प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में केवल दो नाटक संगृहीत है— 'नगर उदास' (पृ॰—1 से पृष्ठ 84 तक) तथा 'शाप' (पृ॰ 85 से पृष्ठ 133 तक) दोनों नाट्य रचनाओं के अनुवादक हैं — श्री गौरी शंकर रैणा। एक अच्छे कलाकार, लेखक, अनुवादक एवं संचार टेक्नोलॉजी के विशेषज्ञ। पुस्तक की आवरण सज्जा डीपव्यू डिज़ाईन एजेंसी ने की है — अत्यंत आकर्षक विषयानुकल कलात्मक एवं अर्थ गाम्भीर्यपूर्ण। प्रमुख राष्ट्रीय पत्र—पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ डस्ट कॅवर के पीछे दी गई हैं। पुस्तक का मूल्य है—दो सौ रुपये।

कशमीरी भाषा में क्यमू साहब द्वारा लिखित 'शाप' नाटक सन् 2000 ई॰ में प्रकाशित हुआ।[1] पुस्तक की भूमिका में क्यमू साहब लिखते हैं —'दूसरा नाटक 'शाप' राजतरंगिणी के प्रथम तरंग के 13 श्लोकों पर आधारित है। यह एक युद्ध— विरोधी नाटक है। इस का प्रथम मंचन जम्मू के अभिनव सभागार में 8 अक्टूबर 2004 ई॰ को हुआ था।'

नाटक मूलतः कशमीरी भाषा में लिखा गया है। यह रैणा साहब का बड़प्पन है कि उन्होंने इस अनुवाद कार्य को सफलतापूर्वक पूरा किया है। मुझे उन कठिनाइयों और सीमाओं का पूरा एहसास है जो एक अनुवादक को अनुवाद करते समय पेश आती हैं। रैणा साहब दोनों भाषाओं के जानकार हैं यदि उन्होंने किसी भाषाज्ञानी विद्वान से सहायता ली होती तो अनूदित कृति में अद्भुत चमक दिखाई देती।

क्यमू साहब घाटी के चर्चित रंगकर्मी हैं। नाटक खेलने में माहिर। प्रदेश के रंगमंचीय इतिहास में क्यमू की भूमिका निस्संदेह ऐतिहासिक रही है। 'पॉथर' को मंच के साथ जोड़ कर उन्होंने अभिनय—तकनीक (शिल्पविधि) में एक नया अध्याय जोड़ दिया है।

मैं समझता हूँ कि प्रस्तुत नाट्य रचना में ऐतिहासिक पात्रों (राजा गोनन्द प्रथम, राजमाता, दामूदर, यशोमती, बलराम, श्री कृष्ण आदि) का जितना महत्त्व है उतना ही महत्त्व सूत्रधार (Stage Manager),

---

1. 'शाप—अकनन्दुन' शीर्षक से दो नाटक एक साथ प्रकाशित हुए है — 'शाप' और 'अकनन्दुन'। मूलतः क्यमू साहब ने 1998 ई॰ में 'शाप' नाटक मंच के लिये लिखा था। —लेखक—

विदूषक (Jester, मसख़रा) और नटी (actress, अभिनेत्री) का है। इतिहास के बिखराव को कम करने में, दो घटनाओं के मध्य परस्पर तारतम्य स्थापित करने में, कथा को गति देने में, अभिनय को लोक मानस के साथ जोड़ने में तथा रंगमंच को मनोरंजन के साथ–साथ जन जाग्रण के हेतु सार्थक साधन बनाने में इन पात्रों का योगदान उत्कृष्ट है।

सूत्रधार और विदूषक के द्वारा ही नाटक आरम्भ होता है। कथा तत्त्व के सम्बन्ध सूत्रों की जानकारी देते हुए सूत्रधार कहता है कि –'राजतरंगिणी' में सहस्रों वर्ष पूर्व के जिस राजा का उल्लेख मिलता है वह कश्मीर का पहला शासक था। उसका नाम था राजा गोनन्द।' (पृ॰ 88) विदूषक आरम्भ में ही राजाओं की शाही ठाट का उल्लेख करते हुए इस बात की सूचना देते हैं कि 'कश्मीर का राजा! तब का राजा, जब लोग सिर्फ गर्मियों में यहाँ बसते थे। धान की कटाई होते ही पर्वतों के पार चले जाते थे और फिर बर्फ पिघलते ही वापस वादी में आते थे।. ....कइयों की प्रभुता ऐसी कि वे प्रभु जैसे हो गये थे:...'' । (पृ॰ 88–89)

आत्माभिमानी गोनन्द बुद्धि विवेक से अधिक बाहुबल में विश्वास रखते थे। गोनन्द अपने रिश्तेदार राजा जरासन्ध की सहायता हेतु राजधर्म की उपेक्षा करने पर तुले हैं यद्यपि वरिष्ठ मंत्री विवेकाधृत मंत्रणा देते हुए उसे कहते हैं – 'राजन्'! राजा जरासन्ध आप के सम्बन्धी हैं किन्तु हमारा हितैषी कौन है यह हमें जानना होगा। महाबली कंस है? राजा जरासंध हैं कि वे यादव हैं?' मदमस्त राजा मंत्री के कथन की उपेक्षा करते हुए अपनी राह चलते हैं और परिणाम अपमानजनक पराजय और राष्ट्र अहित। राष्ट्र हित से अधिक गोनन्द और उसके पुत्र दामूदर अपने निजी रिश्तों और रिश्तेदारों को तथा अपने आत्माभिमान और विवेहकहीन बाहुबल को अधिक महत्त्व देते हैं।

रणभूमि में एक अन्ध पुरुष राजा को अपने देश लौट जाने का परामर्श देते हैं और स्पष्ट शब्दों में राजा को सचेत करते हुए कहते हैं कि यह–'दृष्टि होते हुए भी दृष्टि हीनता' का परिणाम है। (पृ॰ 102)

क्यमू साहब प्रस्तुत नाटक के द्वारा 21वीं शताब्दी के भयाक्रान्त जनमानस को शान्ति का सन्देश देना चाहते हैं। उन्होंने स्वयं बात को

स्पष्ट करते हुए लिखा है –"यह एक युद्ध विरोधी नाटक है।" (भूमिका–पृ.4) – युद्ध वस्तुतः विनाश लीला का व्यक्त रूप है। प्रथम विश्वयुद्ध तथा द्वितीय विश्वयुद्ध आज भी मानव विनाश के अश्रुसिक्त इतिहास की पुनः स्मृति कराते है। आश्चर्य इस बात का है कि आज भी विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में मानव युद्धग्रस्त जीवन जी रहा है। युद्ध के साथ आतंक और आतंकवादी दानव लीला आज मानव अस्तित्व को ही कलंकित कर रही है। नेत्रहीन वृद्ध के निम्नलिखित शब्दों में कितनी वेदना निहित है– '..........ऐसा गर्व अच्छा नहीं जिस के कारण न जाने कितने मरेंगे। कितने ही हताहत होंगे। राजन्! यह रक्तपात रोको। सुनो मेरी बात, कश्मीर लौट जाओ।' (पृ. 102)

मैं तनिक पाठक का ध्यान इस नाटक के शीर्षक की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ–

दामूदर कृष्ण के हाथों मारे जाते हैं। राजमाता पुत्र शोक से विह्वल हो उठी। इस से पूर्व उन के पति गोनन्द–प्रथम बलराम के हाथों मारे गये।

वरिष्ठ मंत्री जब श्रीकृष्ण का परिचय राजमाता को देते हैं तो वह तड़प उठती है और कृद्ध होकर कहती है–'कृष्ण! देखो मुझे । मेरी वेदना का अनुभव करो। यह सब तुम्हारा नाम लेने लगे हैं। मैं किस का नाम लूँ? स्वामी का कि पुत्र का? अंत समय कौन पिलायेगा जल मुझे ? (मुटिठयाँ बांध कर) हे कृष्ण ! मेरी ही भाँति, अन्त समय पर कोई कुल पुत्र न मिले तुम्हें जल पिलाने को । यह शाप है मेरा तुम्ह, शाप' (पृ. 131)।

'शाप' वास्तव में बददुआ है, धिक्कार और भर्त्सना है उन कूटनीतिज्ञों, राजनीतिज्ञों, सत्ताधारियों और गर्वान्ध शासकों के प्रति जिन्होंने इस 21वीं शताब्दी में विश्व को रक्तपात, हिंसा एवं आतंकी व्यभिचार (दुष्कर्म) का केन्द्र बना दिया है। जो अपने अहं की तुष्टि के लिये विश्व को विनाश का लीलाक्षेत्र बना रहे हैं। जो शान्ति–विरोधी हैं मानवीय संवेदनाओं से रहित। जो देवता की हँसी हँसते हैं और यमराज की लीला रचते हैं। जिन के मुहँ में राम और बग़ल में छुरी है। जो अपनी प्रभुसत्ता को बनाये रखने के लिये कुछ भी करने को तैयार होते

हैं। चाहे वह मानवता का खून हो या अपने ईमान का।

क्यमू साहब स्वयं एक प्रशिक्षित रंगकर्मी है। रंगगृह (Theatre) के अंग–अंग से परिचित, एक अनुभवी निर्देशक एवं सूत्रधार। स्वयं एक सफल अभिनेता और लोक मानस से जुड़े उच्चकोटि के नाटककार। उन्हें विश्वास है कि लिखित नाटक तब तक अपूर्ण है जब तक उसका सफल मंचन न हो। उन्होंने जम्मू–कश्मीर राज्य में तथा राज्य से बाहर देश के कई शहरों में नाटक खेले हैं और दर्शकगण को अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के प्रति आकर्षित किया। 'शाप' नाटक का मंचन भी जम्मू में 8 अक्टूबर 2004 ई॰ को हुआ। अब इस नाटक का हिन्दी रूप हमारे सामने आ रहा है।

लेखक ने रंगमंच की समस्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वार्तालापों, कार्यसंकेतों और अभिनय–भंगिमाओं की सृष्टि की है। अंक विभाजन यहाँ तक कि अंकों के अंतर्गत दृश्य विभाजन अपने आप में अद्भुत है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि 'शाप' एक पौराणिक–ऐतिहासिक नाटक है और हज़ारों वर्ष पूर्व कश्मीर इतिहास के एक प्रतापी राज्य परिवार की ऐतिहासिक भूल–चूक से जुड़ा एक विश्वसनीय दस्तावेज़ है। देश कालानुसार नाटक के मंचन हेतु मंचविधान एवं नाट्यकला का विशेष ध्यान रखा गया है। नाटककार एक अनुभवी रंगकर्मी होने के साथ अपने वर्तमान के प्रति सजग हैं। विश्वरंगमंच पर कूटनीतिक दुश्चक्रों के कारण आज जो कुछ घट रहा है उस के प्रति अपनी सजगता व्यक्त करते हुए क्यमू प्राचीन इतिहास के घटनाचक्र द्वारा वर्तमान कालीन जीवन– सत्य को उजागर करने का सफल प्रयास कर रहे हैं। लगता है इस नाटक रचना का संवेद्य हमारे वर्तमानकालीन जीवन के साथ जुड़ा है।

क्यमू साहब का यह प्रयास शान्तिमय सहअस्तित्व के सिद्धान्त पर रक्तपिपासा रहित जीवन जीने का प्रयास है।

हम जीवन जीना चाहते हैं, खोना नहीं।

(15 अप्रैल 2008 ई॰, रामनवमी)

जम्मू-कश्मीर राज्य में राजभाषा के रूप में हिन्दी

भाषा भावाभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का साधन है, यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है। ध्वनि यंत्र के विभिन्न अवयवों से निश्वास की अवस्था में उच्चरित भाषा समाज को जीवनदान देती हुई सृष्टि विकास में गति एवं शक्ति प्रदान करती है। स्वरयंत्र–मुख से लेकर ओष्ठों तक विभिन्न प्रयासों से भाषा–ध्वनि का उच्चारण होता है। यह एक तकनीकी विषय है और इस पर ध्यानपूर्वक विचार करने से मनुष्य मन ही मन आश्चर्यचकित रह जाता है साथ ही अलौकिक शक्ति के वरदान पर मन मुदिंत।

भाषा का वह रूप जो मात्र दैनिक व्यवहार के लिये केवल बोल कर प्रयोग में लाया जाता है – बोली कहलाता है। बोली का क्षेत्रीय विकास विभाषा और विभाषा का सम्यक् विकास भाषा के रूप में होता है। समय व्यतीत होने के साथ साथ भाषा का एक आदर्श लिखित रूप विकसित होता है और लिपि उस की पहचान बन जाती है।

पुनः विकसित होकर एक प्रमुख भाषा राष्ट्रभाषा का गौरवशाली पद प्राप्त करती है। 'राष्ट्र' वस्तुतः तीन तत्त्वों पर आधारित होता है – भूमि, भूमिवासीजन और जनसंस्कृति। तनिक सोचिये, इन में से एक भी तत्त्व की कमी राष्ट्र को साकार रूप धारण करते हुए भी पंगु बना देती है। जब तीनों तत्त्व परस्पर मिल जायेंगे तो राष्ट्र का वजूद साकार हो जायेगा, अन्यथा स्वप्न और यथार्थ का अन्तर बना रहेगा।

प्रत्येक गौरवशाली राष्ट्र की अपनी राष्ट्रभाषा और राज भाषा

(official language) होती है। यह दूसरी बात है कि अंग्रेज़ों ने अपने राज्य काल में हमें इस सीमा तक मिटा दिया कि हम 'साहबी ठाटबाट' में अपनी पहचान भूल गये और दिन रात अंग्रेज़ी भाषा के प्रशस्ति गीत गाते रहे। भारत को स्वतंत्र हुए साठ वर्ष से अधिक समय गुज़र गया लेकिन आज भी सदियों की परतंत्रता के चिह्न हमारे मस्तिष्क को कुरेदते हुए यथार्थ की वस्तुस्थिति को समझने और जानने की प्रेरणा देते हैं।

राजकीय/शासकीय/सरकारी कामकाज को चलाने हेतु किसी भी स्वावलम्बी स्वतंत्र–संघीय–राज व्यवस्था में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है कि जिस को अपनाकर हम देश की शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चला सके। ग़ुलाम हिन्दुस्तान में यह स्थान फ़ारसी के बाद अंग्रेज़ी ने ले लिया था और ऐसी परिस्थिति को जन्म दिया कि साठ वर्षों से अधिक समय आज़ाद होने के बाद भी आज हम 'हाय' और 'वाय' कल्चर के दीवाने बनकर अपनी भाग्यहीनता का परिचय देते हैं। राजभाषा किसी भी संघ अथवा राष्ट्र की कार्य–व्यवस्था को आगे बढ़ाने का साधन होती है। इसे संविधान, राष्ट्र और सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त होती हैं। इसकी अपनी विशिष्ट और सम्पन्न शब्दावली होती हैं और यह सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रादेशिक भाषाओं अथवा क्षेत्रीय भाषाओं के सहयोग से आदर्श भाषा का रूप धारण करती है। यह बात स्पष्ट होनी चाहिये कि कोई भी भाषा मात्र दस–बीस–पचास वर्षों में ही आदर्श रूप धारण नहीं करती, यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है और विकास की कोई निश्चित समयावधि नहीं होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि भाषा को पनपने अथवा विकसित होने में विविध शक्ति स्रोतों से संरक्षण मिलता है कि नहीं। हम देखते हैं कि आज केन्द्र सरकार करोड़ों रुपये राज भाषा के प्रचार हेतु व्यय कर रही है।

14 सितम्बर सन् 1949 ई॰ को भारतीय संविधान परिषद् ने इस शर्त के साथ हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी को राष्ट्रलिपि के रूप में स्वतंत्र भारत के लिये स्वीकृति प्रदान की कि संविधान लागू होने के

15 वर्ष तक अंग्रेज़ी भाषा और विदेशी अंकमाला का बराबर राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ व्यवहार वैध माना जायेगा। उस में एक धारा यह भी जोड़ दी गई कि राष्ट्रपति संविधान लागू होने के पाँचवें और दसवें वर्ष में 'राजभाषा आयोग' को नियुक्त करेंगे जो राजभाषा के क्रमशः प्रयोग एवं संवर्द्धन पर अपना विवरण प्रस्तुत करेंगे।

संविधान 26 जनवरी सन् 1950 ई॰ को लागू हुआ और तत्कालीन राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने 7 जून सन् 1955 ई॰ को एक 'राजभाषा आयोग' नियुक्त किया जिस के 21 सदस्य थे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 धारा 1,2,3 तथ अनुच्छेद 344 – 351 इस दृष्टि से मार्गदर्शक के रूप में देखे जा सकते हैं।

घटनाचक्र द्रुत गति से बदलता रहा। राजभाषा हिन्दी के पक्ष में समर्थकों का एक दल खड़ा हुआ जिन में वरिष्ठ राजनेता, पत्रकार, साहित्यकार, कवि, संसदसदस्य एवं भाषाविद् थे। इन में उल्लेखनीय हैं–

(1) श्री पुरुषोत्तमदास टंडन
(2) श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी
(3) डॉ॰ रामधारी सिंह 'दिनकर' राज भाषा आयोग के सदस्य
(4) श्री बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' ''
(5) डॉ॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ''
(6) डॉ॰ बाबू राम सक्सेना ''
(7) प्रोफ़ेसर पृथ्वीनाथ 'पुष्प' (कश्मीर निवासी) ''

पक्षधरों के साथ–साथ हिन्दी विरोधी भारतवासियों का भी बड़ा ज़ोर रहा है। परिणामस्वरूप हिन्दी विरोधी आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। परिस्थितियों ने भीषणरूप धारण किया और बहुत समय तक यह विवाद चलता रहा और आज भी इस की अनुगूँज सुनाई दे रही है।

एक और महत्त्वपूर्ण विषय़ पर भी चर्चा करना संगत होगा। भाषा वर्गीकरण के आधार पर सम्पूर्ण भारत दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) हिन्दी प्रदेश – सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, दिल्ली,

हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान आदि

(2) अहिन्दी प्रदेश – हिन्दी प्रदेशों को छोड़ कर शेष समस्त भारत

अहिन्दी प्रदेशों में लोक बोली, क्षेत्रीय भाषा एवं प्रादेशिक भाषा के साथ–साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी भी अहिन्दी पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रही थी। यह वह समय था जब अहिन्दी प्रदेशों में अंग्रेज़ी भाषा का भी तीव्र प्रभाव था। वस्तुतः अंग्रेज़ी भाषा ही उस समय विभिन्न प्रदेशों में परस्पर सम्पर्क भाषा (link language) के रूप में व्यवहार में लाई जाती थी।

अब जम्मू–कश्मीर राज्य के सन्दर्भ में वस्तुस्थिति को देखिये। यहाँ मातृभाषा कश्मीर में 'कश्मीरी', जम्मू में 'डोगरी', लद्दाख में 'लद्दाखी', पहाड़ी क्षेत्रों में 'पहाड़ी' आदि प्रचलित हैं अर्थात् राज्य के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न मातृभाषाएँ हैं।

राज्य सरकार ने सरकारी भाषा के रूप में उर्दू को मान्यता दी है और मूलतः कामकाज और शिक्षा के माध्यम के रूप में आज भी अंग्रेजी भाषा का व्यवहार हो रहा है। राष्ट्र की राजभाषा हिन्दी और प्रादेशिक स्तर पर नाम के लिये राजभाषा उर्दू और काम के लिय अंग्रेज़ी। अजब विरोधाभास है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में व्यक्त होनी चाहिये कि राज्य सरकार हिन्दी को राजभाषा के रूप में व्यवहृत होने या न होने में विशेष रुचि नहीं रखती। लेकिन यह भी एक सचाई है कि राज्य के दो विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर तक हिन्दी पढ़ने और पढ़ाने की पूर्ण व्यवस्था है और हिन्दी अब केवल किसी वर्ग या जाति तक सीमित नहीं है अपितु कई मुसलमान और बौद्ध छात्र–छात्राएँ भी चाव के साथ हिन्दी भाषा का अध्ययन और ज़िम्मेदारी के साथ अध्यापन कार्य कर रहे हैं। यह परिवर्धन बड़ा उत्साहवर्धक है।

जम्मू–कश्मीर प्रदेश में राजभाषा के रूप में केन्द्र सरकार के कार्यालयों, संस्थाओं एवं प्रचार व इलकत्रानिक केन्द्रों में निस्संदेह हिन्दी का व्यवहार हो रहा है। केन्द्र सरकार सुनिश्चित योजनाओं के द्वारा जम्मू–कश्मीर राज्य में हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार का कार्य चला रही है – ऐसा उस का विश्वास है। केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के

हेतु हिन्दी पढ़ने और कामकाजी हिन्दी सीखने के लिये कक्षाएँ चलायी जा रही हैं जिन में अनुभवी और पढ़े लिखे अध्यापक वयस्क शिक्षार्थियों को भाषा सीखने के लिये प्रेरित करते हैं– इस में सन्देह नहीं। यहाँ तक कि दफ़्तरी कामकाज के लिये वरिष्ठ अधिकारियों से लेकर छोटे कर्मचारी तक हिन्दी भाषा का खुल कर व्यवहार करते हैं।

हिन्दी राष्ट्रभाषा के साथ–साथ राजभाषा के रूप में लोकप्रिय हो रही है और यह सम्पूर्ण राष्ट्र की राष्ट्रीय एकता के लिये वरदान सिद्ध होगा। पहला महत्त्वपूर्ण तत्त्व जिस की ओर मैं स्पष्ट संकेत करना चाहता हूँ कि जम्मू कश्मीर राज्य में राजभाषा के रूप में हिन्दी सीमित है – केन्द्र सरकार के कार्यालयों, संस्थाओं, प्रचार और इलकत्रानिक माध्यमों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा अन्य संस्थाओं तक जिन्हें केन्द्र की ओर से राजभाषा को लोकप्रिय बनाने के हेतु शतप्रतिशत सहयोग प्राप्त होता है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व जो बुद्धिजीवियों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रहा है वह है प्रचार एवं इलकत्रानिक माध्यमों का योगदान। इन संस्थाओं ने राजभाषा के रूप में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है और आज भी निबाह रहे हैं। केन्द्र सरकार के कार्यालयों में हिन्दी अधिकारी नियुक्त किये गये हैं जिन्हें यह उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि दफ़्तरीकार्य को चलाने हेतु हिन्दी भाषा के व्यवहार के लिये भरसक प्रयत्नशील रहें और पूरी ईमानदारी के साथ अपना उत्तरदायित्व निबाहते हुए कर्मचारियों को हिन्दी में सरकारी कामकाज चलाने हेतु प्रेरित करें। शंकाओं का निवारण करते हुए हिन्दी को लोकमानस के साथ जोड़ दें। पूरे वर्ष विविध कार्यक्रमों और कार्य योजनाओं के द्वारा हिन्दी प्रचार के हेतु प्रयत्नशील रहें।

मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर रेडियो कश्मीर श्रीनगर एवं रेडियो कश्मीर, जम्मू की भूमिका पर अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूँ। महान कश्मीरी, डोगरी, गोजरी एवं लद्दाखी कवियों, नाटककारों और कहानीकारों की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण भारत के विविध जनपदों तक पहुँचाने में इन दो रेडियो स्टेशनों ने

ऐतिहासिक भूमिका निबाही है। इतना ही नहीं, राष्ट्रभाषा हिन्दी में तैयार किये गये नाटकों, रेडियो फीचरों, ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित कार्यक्रनों, राजनीतिक घटनाचक्रों से जुड़ी वादविवाद गोष्ठियों को कश्मीरी और डोगरी भाषा में रूपान्तरित कर राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाओं में परस्पर तालमेल बिठाने में इन केन्द्रों का प्रशंसनीय योगदान रहा है। आज से लगभग 19 वर्ष पूर्व एक भूतपूर्व स्टेशन निदेशक स्वर्गीय लस्सा कौल द्वारा सरकारी फाइलों पर हिन्दी में लिखी टिप्पणियाँ एवं आदेश मैंने स्वयं देखे हैं। इन स्टेशनों से विधिवत हिन्दी कार्यक्रम का प्रसारण लोकाकर्षण का केन्द्र बन चुका है। आज आप स्वर्गीय गुलाम हसन बेग 'आरिफ़', स्वर्गीय गुलाम रसूल नाज़की, स्वर्गीय दीनानाथ 'नादिम' एवं स्वर्गीय मोती लाल साक़ी पर वार्ताएँ हिन्दी भाषा में सुन रहे हैं। श्रीनगर स्टेशन के भीतर हिन्दी को लोकप्रिय बनाने हेतु तैयार की गई मार्मिक उक्तियाँ आप का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं।

राजभाषा के रूप में हिन्दी के पनपने के हेतु जम्मू में स्थिति कश्मीर से तनिक भिन्न है। यहाँ डोगरी भाषा मातृभाषा के रूप में सर्वस्वीकृत है तथा इसे व्यापक स्तर पर विकास के पथ पर आगे ले जाने हेतु योजनाएँ क्रियान्वित हो रही हैं। द्वितीय भाषा के रूप में यहाँ हिन्दी–अंग्रेज़ी की तुलना में बहुत आगे हैं। लोगों के द्वारा हिन्दी भाषा का व्यवहार हर जगह सहज रूप से हो रहा है और यह भाषा निस्सन्देह जनमानस के साथ जुडी हुई है। जो लोग डुग्गर क्षेत्र के नहीं है उन से जुड़ने का एक मात्र साधन (भाषा के रूप में) हिन्दी है। अंग्रेज़ी भाषा के प्रति जन सामान्य में उतना मोह नहीं है जितना कश्मीर खण्ड में देखने को मिलता है जहाँ द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी नहीं, उर्दू अथवा अंग्रेज़ी को वरीयता दी जाती है। यह सब वस्तुतः जनमानस पर निर्भर करता है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले समाचार बुलिटनों ने हिन्दी के प्रति जन मानस में एक आकर्षण उत्पन्न किया है। आज हर घण्टे के बाद समाचार प्रसारित हो रहे हैं। टेलीविजन के समाचार चेनल निरंतर समाचार प्रसारित करते रहते हैं।

हर बात को सनसनीखेज़ बनाना कोई उन से सीखे। समाचार क्रम और व्यापारिक तमाशा अधिक। लेकिन एक ज़माने में दिन में केवल तीन चार बार ही समाचार सुनने को मिलते थे अतः बड़ी उत्सुकता के साथ लोग अपने घरों में रेडियो सेट के पास खबर सुनने के लिये एकत्र हो जाते थे। मुझे आज भी सन् 1951–52 का ज़माना याद आ रहा है जब हमारे मूल निवास स्थान (सत्थू–बरबरशाह–श्रीनगर) में केवल एक घर में रेडियो सेट था, सारे मुहल्ले में एक रेडियो सेट। मेरे शब्द एक साथ कई अर्थबिन्दुओं को छू रहे हैं।

आज राजभाषा के रूप में इलकत्रानिक माध्यमों के अतिरिक्त राष्ट्रीय कृत बैंकों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के द्वारा हिन्दी को दफ़्तरी कामकाज के लिये व्यवहार में लाया जा रहा है। इन संस्थाओं ने आज अंग्रेज़ी की तुलना में राजभाषा हिन्दी को पहली पसन्द के रूप में स्वीकृति प्रदान की है। राज्य के भीतर केन्द्र सरकार के कार्यालयों में अब सारा काम काज हिन्दी भाषा में भी हो रहा है। एक दिन अवश्य ऐसा आयेगा कि जब यह 'भी' शब्द स्वयमेव हमारे भाषा प्रयोग से ओझल हो जायेगा।

यहाँ मैं आज की वस्तुस्थिति के प्रति पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आज का युग 'कम्प्यूटर युग' कहलाता है। कुछ लोगों का मानना है कि अब हम 'लेपटाप– युग' में प्रवेश कर चुके हैं। आज हमारे दैनिक जीवन एवं परिवार के भीतर भी कम्प्यूटर ने प्रवेश कर लिया है। आज 'विश्व–ग्राम' की अवधारणा हमें एक दूसरे के सामने ला खड़ा कर देती है। समय आ रहा है जब प्रांत, देश और राष्ट्र की सीमाएँ अपनी सार्थकता खो देंगी और मानव केवल एक मानव के रूप में अपने ही दानवी स्वरूप से सिहर उठेगा। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि ने कम्प्यूटर में प्रवेश कर लिया है। कई 'फॉट' तैयार हो चुके हैं और कम्प्यूटर विशेषज्ञ हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि हेतु कम्प्यूटर हार्ड वियर में नये–नये प्रयोग कर रहे हैं। कश्मीरी भाषा के लिये देवनागरी लिपि में 'अरणिमाल फॉट' तैयार हो चुका है और कम्प्यूटर के सी.पी. यू (Central Processing Unit) में आसानी के साथ लोड़ कर के व्यवहार

में लाया जा सकता है। आज स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यलयों में ही नहीं, दफ्तरों, प्रतिष्ठानों, बैंकों, औद्योगिक कार्यालयों यहाँ तक कि बड़े–बड़े दुकानों पर भी सारा काम कम्प्यूटर से हो रहा है। यह एक नई स्थिति है और राजभाषा हिन्दी को यदि जम्मू–कश्मीर राज्य में लोकप्रिय बनाना है तो कम्प्यूटर की भाषा के रूप में इसे स्वीकृति मिल जानी चाहिये।

राष्ट्रीय गौरव की प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये राजभाषा के रूप में देश की राष्ट्रभाषा को ही मान्यता मिलनी चाहिये। साठ वर्ष स्वतंत्र होने के बाद भी ग़ुलामी का कमर तोड़ बोझा ढोना और ढोने की उत्सुकता दिखाना कोई बुद्धिमानी नहीं। इसे राष्ट्रीय गौरव और जातीय मर्यादा का हनन होता है। एक सर्वसम्पन्न और जागरूक प्रजातंत्र के हेतु राजभाषा उस की सांस्कृतिक सम्पन्नता एवं बैद्धिक चेतना का प्रतीक होती है। इस सोच ने आज राजभाषा हिन्दी को जम्मू कश्मीर राज्य में जनमानस के निकट आने का सुअवसर प्रदान किया है। मैं जनमानस की स्वीकृति को विकास की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण समझता हूँ।

जम्मू–क□मीर राज्य में राज भाशा हिन्दी के सम्मुख समस्याएँ–

(1) कश्मीर खण्ड़ में शिक्षण का माध्यम हिन्दी न होने के कारण समाज का अधिकांश भाग हिन्दी भाषा की प्राथमिक जानकारी से वंचित रहता है। यह स्थिति जम्मू में नहीं है।

(2) सरकारी संस्थाओं और गैर–सरकारी प्रतिष्ठानों में अधिकांश कर्मचारी हिन्दी भाषा से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।

(3) उन्हें भाषा ज्ञान दिलाने के हेतु केन्द्र सरकार ने जो व्यवस्था की है वह बेहद कमज़ोर, संकल्पहीन एवं दिशाहीन अवस्था में खानापूर्ति करने तक सीमित है।

(4) हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में लोकप्रिय बनाने हेतु सरकार जो प्रोत्साहन दे रही है अथवा धनराशि प्रदान कर रही है उस का अधिकांश भाग उत्सवों की भेंट चढ़ जाता है और सस्ते प्रचार हेतु उसका अपव्यय हो रहा है।

(5) कर्मचारी वर्ग के लिये कहीं भी हिन्दी विद्वानों, लेखकों, कवियों

अथवा भाषापण्डितों के साथ विचारविनिमय की व्यवस्था नहीं की जाती। उन के विशिष्ट व्याख्यानों का आयोजन नहीं होता।

हिन्दी विशेषज्ञ, जिन्हें कश्मीरी और डोगरी प्रादेशिक भाषाओं की लेशमात्र भी जानकारी नहीं है, परामर्शदाता बन कर राज्य में आते हैं। यहाँ की स्थानीय प्रतिभाओं का उपयोग नहीं होता है। यदि ऐसा किया जाता तो लाखों रुपये जिन्हें परामर्शदाताओं पर व्यय किया जाता है, बचाया जा सकता और उसी धनराशि का सदोपयोग सीखने वाले कर्मचारियों के हेतु होता।

(6) सारे कार्यक्रम में दफ्तरशाही/नौकरशाही छा गई है जिसके परिणामस्वरूप फाइलों और लिखित कागज़ों पर उत्साहजनक आँकड़े पढ़ने वालों को मोहित कर देते हैं पर यथार्थ ठीक इसके विपरीत होता है। राजभाषा के रूप में हिन्दी सरकारी पदाधिकारियों की मोटी फाइलों में कैद है इसे मुक्त कराना होगा। सत्ताधारियों को नौकरशाही कार्यव्यवस्था से अलग हटकर इस विषय पर सोचना होगा।

(7) राजभाषा के हेतु संस्कृत गर्भित समासप्रधान क्लिष्ट हिन्दी नहीं अपितु जनव्यवहार की अत्यन्त सरल भाषा का स्वरूप ग्राह्य है। किसी भी हिन्दी प्रदेश की पण्डिताऊ हिन्दी का यहाँ कोई स्थान नहीं है। हमें राजभाषा के रूप में उस हिन्दी का स्वागत करना चाहिये जिस में हमारी मातृभाषाएँ, लोक संस्कृति, आचार–विचार एवं लोकविश्वास शब्दों की अन्तरात्मा में निहित हों, वह राजभाषा जिस को कश्मीर की कश्मीरियत एवं डुग्गर प्रदेश की शौर्य गाथाएँ महका रही है। इस राजभाषा का लोकरंग या प्रादेशिक रंग चोखा होना चाहिये तभी यह जनमानस के निकट आ सकती है।

(8) राजभाषा की लोकप्रियता बढ़ाने हेतु इलकत्रानिक माध्यमों का भरपूर प्रयोग नहीं होता है। इलकत्रानिक माध्यमों ने सही आदमी/प्रतिभा की तलाश करना कब का छोड़ दिया है। स्थानीय लोगों को हिन्दी कार्यक्रमों के साथ जोड़ने की नितांत आवश्यकता है। कार्यालय में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी को एक वर्ष में कम से कम

200 हिन्दी शब्दों की जानकारी प्राप्त होनी चाहिये – इस बात की ओर कोई ध्यान नही देता।

(9) इसी प्रकार विचारगोष्ठियों, कार्यशालाओं, व्याख्यान मालाओं, कामकाजी हिन्दी भाषा के व्यवहार से सम्बन्धित प्रतियोगिताओं, उच्चारण प्रतियोगिताओं की व्यवस्था नहीं के बराबर है। राजभाषा हिन्दी विभिन्न संस्थाओं की फाइलों में दम़ तोड़ती कराहती नज़र आती है।

(10) सीखने वालों में भी संकल्प का अभाव है। तनिक प्रतिज्ञा कीजिये कि हम एक महीने के लिये विदेशी भाषा का मोह त्याग कर स्वदेशी भाषा का दैनिक जीवन में व्यवहार करेंगे। ऐसा करने से ज़रूर हम 'मॉम–पॉप' कल्चर की बेड़ियों से छूट कर मुक्त हो जायेंगे, जो राजभाषा हिन्दी के पनपने हेतु वरदान सिद्ध होगा।

समस्याओं के समाधान : कुछ सुझाव

(1) जनमानस को तैयार करना नितान्तावश्यक है। जो अनर्गल प्रचार राजभाषा के विरोध में विदेशी भाषाभक्त कर रहे हैं उस के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है। लोगों तक यह बात पहुँचनी चाहिये कि भाषा केवल 'भाव अभिव्यक्ति और विचार विनिमय का एक सशक्त साधन' है जिसे किसी वर्ग, सम्प्रदाय अथवा जाति के सीकचों में क़ैद नहीं किया जा सकता।

(2) भारत सरकार जम्मू–कश्मीर राज्य में राजभाषा प्रचार के लिए जो वित्तीय सहायता दे रही है क्या उसका सही प्रयोग हो रहा है। स्वतंत्र संस्थाओं के द्वारा इस पर नज़र रखने की आवश्यकता है। सितम्बर मास में 'हिन्दी दिवस' का पाक्षिक/साप्ताहिक अथवा त्रिदिवसीय उत्सव मनाना पर्याप्त नहीं है। मैं उत्सव मनाने का विरोधी नहीं हूँ। उत्सव अवश्य मनाया जाना चाहिये लेकिन एक निश्चित कार्ययोजना को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से। उत्सव नाट्कबाज़ी नहीं है। छोटे दर्जे के कर्मचारियों को उत्साहित करने के हेतु उन की परस्पर वादविवाद गोष्ठियाँ, हिन्दी लेखन प्रतियोगिताएँ, प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम, काव्य गोष्ठियाँ एवं भाषाज्ञान सम्बन्धी व्याख्यान आयोजित करना किसी मंत्री या पदाधिकारी को आमंत्रित करने से

अधिक महत्त्वपूर्ण है।

संस्थान के मुख्य अधिकारी में नैतिक साहस और अद्भुत निर्णय शक्ति होनी चाहिये, सफलता ज़रूर ऐसे अधिकारी के चरण चूम लेगी। हमारे देश में ऐसे प्रबन्ध अधिकारियों, व्यवस्थापकों, संस्थान अध्यक्षों और कार्यालय निदेशकों की कमी नहीं है – यह मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ। वित्तीय सहायता में वृद्धि होनी चाहिये क्योंकि समय गुज़रने के साथ–साथ महंगाई में वृद्धि हो रही है और रुपये का मूल्य घट रहा है।

(3) विभिन्न संस्थाओं एवं कार्यालयों में राजभाषा प्रचार के हेतु परस्पर तालमेल नहीं है। हम एक दूसरे के सहयोग को प्राप्त करने के लिये चिन्तित नहीं अपितु एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये व्यग्र हैं। यदि परस्पर विभिन्न संस्थाओं में तालमेल होता तो अधिक दृढ़ता के साथ संकल्पबद्ध रूप में राजभाषा प्रचार का अभियान चलाया जा सकता था। इस दिशा में एक समन्वयन समिति का गठन नितान्तावश्यक है।

(4) सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों और सत्ताधारियों को इस बात की जानकारी होनी चाहिये कि हिन्दी भाषा के ज्ञाता मात्र दिल्ली, उत्तरप्रदेश तथा अन्य हिन्दी प्रदेशों में ही नहीं हैं अपितु अहिन्दी प्रदेशों में भी हिन्दी भाषा के ऐसे विशेषज्ञ मिलेंगे जो अपने प्रदेश के इतिहास और भूगोल से पूर्ण परिचित होने के साथ–साथ जन मानस के पारखी भी हैं। ऐसे विद्वानों का सहयोग प्राप्त करना समय की आवश्यकता है और जो समय की आवश्यकता को नहीं समझता, वह अकर्मण्य है। ऐसे विद्वान जो मेरे प्रदेश की प्रादेशिक बोलियों–भाषाओं से पूर्णतः अपरिचित हैं, जो मेरी संस्कृति के जानकार नहीं हैं, वे मुझे क्या परामर्श देंगे। तनिक सोचिये, बात कड़वी है परन्तु शतप्रतिशत यथार्थ पर आधारित।

(5) राजभाषा हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के हेतु विशिष्ट पत्र– पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था प्रादेशिक स्तर पर होनी चाहिये। हर महीने एक 'समाचार सूचना पत्र' जो आरम्भ में चार

पाँच पृष्ठों तक ही सीमित हो, प्रकाशित होना चाहिये जिस में राजभाषा के सम्बन्ध में होने वाली गतिविधियों की जानकारी सम्बन्धित लोगों तक पहुँचायी जा सके। वर्ष में कम से कम एक बार 'हिन्दी– दिवस' के अवसर पर पत्रिका का प्रकाशन होना चाहिये जिस में सम्पूर्ण प्रदेश की राजभाषा हिन्दी सम्बन्धी उपलब्धियों का ब्योरा दिया गया हो तथा अन्य आवश्यक सामग्री प्रकाशित हो।

(6) वर्ष में एक बार 'हिन्दी दिवस' के अवसर पर श्रेष्ठ कर्मचारी (जो हिन्दी राजभाषा प्रयोग में स्थिरचित संकल्पबद्ध रूप से कार्यरत है) को अच्छी धनराशि के साथ स्मृति चिह्न एवं अंगवस्त्र प्रदान करते हुए सम्मानित किया जाना चाहिये। उस के/उन के वेतन में बढ़ोतरी होनी चाहिये। इस प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन सामूहिक रूप से प्रदेश में एक ही स्थान पर होना चाहिये।

(7) महिला कर्मचारियों को विशेष प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने में, सम्पन्न साहित्यिक भाषा बनाने में, कार्यालयों में सरकारी काम के लिये सरकारी भाषा के रूप में व्यवहार योग्य बनाने में महिलाओं की विशिष्ट भूमिका रही है। अतः उन की उपस्थिति हर कार्यक्रम में होनी चाहिये। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि महिलाओं के माध्यम से ही हिन्दी हमारे घरों में प्रवेश करेगी, हमारे बच्चों को भाषा सीखने के लिये प्रेरित करेगी। इस प्रकार जनमानस धीरे–धीरे राजभाषा हिन्दी के साथ जुड़ जायेगा। नई पीढ़ी इस भाषा के प्रति आकृष्ट होगी।

(8) व्याख्यान–माला के अंतर्गत संगोष्ठियों, वादविवाद प्रतियोगिताओं, भाषा पण्डितों के व्याख्यानों एवं कवि सम्मेलनों का आयोजन नियमित रूप से होने चाहिये। स्वयं लोग स्वेच्छा से राजभाषा को सीखने के लिये सामने आयें, परिस्थितियाँ इस सीमा तक अनुकूल बनानी होंगी।

(9) जम्मू–कश्मीर राज्य में राजभाषा को लोकप्रिय बनाने हेतु एक 'अनुवाद संस्थान/विभाग' की स्थापना होनी चाहिये जहाँ भाषाओं

की शब्द--सम्पदा, पर्यायवाची शब्द–प्रयोग एवं अनुवाद कला की बारीकियों को समझाने के हेतु प्रशिक्षण कक्षायें चलायी जानी चाहिये। सरकारी कामकाज को चलाने में एवं देश के अन्य प्रदेशों के साथ सम्पर्क स्थापित करने में इस संस्थान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहेगा।

(10) प्रत्येक केन्द्रीय संस्थान में पुस्तकालय एवं अध्ययन कक्ष की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि कर्मचारी बन्धु पुस्तकालय से पुस्तकें अपने नाम पर दर्ज कराकर पढ़ने के हेतु घर ले जा सकें। आज कल बाज़ार में पुस्तकों के मूल्य आसमान को छू रहे हैं। प्रकाशकों की चांदी हो रही है। वेतन भोगी साधारण आदमी पुस्तकें खरीदने की स्थिति में नहीं है। पुस्तकालय इस दृष्टि से पर्याप्त लाभदायक भूमिका निबाह सकता है। पुस्तकालय के भीतर ही 'जानकारी केन्द्र' की स्थापना भी होनी चाहिये।

(11) राजभाषा के नाम पर बड़े–बड़े सरकारी पदाधिकारियों की यात्राएँ एकदम बन्द होनी चाहिये। शासन व्यवस्था के ये स्वचालित पुर्ज़े राजभाषा को लोकप्रिय बनाने में कोई ठोस कार्य नहीं कर सकते। आज कल इन की अतिरिक्त सुरक्षा हेतु भी राजभाषा कोष का दोहन करना पड़ता है। सरकार की ओर से नियुक्त आयोग का स्वागत होना चाहिये। आयोग के सदस्य प्रदेश में पधार कर वस्तुस्थिति का निरीक्षण करें – यह स्वागतयोग्य कार्य होगा। आज के संदर्भ में अफ़सरशाही से राजभाषा को मुक्ति दिलाना नितान्तावश्यक है।

(12) हमें संकल्पबद्ध होकर प्रतिज्ञा करनी होगी कि किसी भी स्थिति में खानापूर्ति के लिये काल्पनिक आंकडों और निराधार उपलब्धियों का बखान नहीं करेंगे। मात्र इस संकल्प से ही राजभाषा की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

(13) प्रदेश सरकार हिन्दी के विकास के लिये निस्सन्देह पर्याप्त धन राशि प्रदान कर इसे लोकमानस तक पहुँचाने का काम कर रही है। विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी भाषा और साहित्य का पठन पाठन

एवं शोधकार्य कश्मीर और जम्मू में व्यापक स्तर पर हो रहा है। लेकिन यह एक सचाई है कि वरीयता की दृष्टि से हिन्दी चतुर्थ क्रम पर है। अंग्रेज़ी, उर्दू, कश्मीरी/डोगरी के बाद हिन्दी का क्रम आता है। उन की अपनी विवशताएँ हैं। राज्य संविधान की सीमाओं में बन्धे प्रादेशिक सरकार से हम अधिक सहयोग प्राप्त कर सकें – हमें इस दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिये।

जम्मू कश्मीर राज्य में बेरोज़गारी ने युवामानस को न केवल जीवन के प्रति निराश कर दिया है अपितु उदासीन और क्रुद्ध भी बना दिया है। राजभाषा अध्ययन के बाद रोज़गार की सम्भावनाएँ बढ़ जानी चाहिये और प्रदेश की अपनी प्रतिभा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये – यह नितान्तावश्यक है।

हिन्दी पढ़ाने के लिये हमें हिन्दी प्रदेशों की ओर देखना न पड़े–यही हमारा लक्ष्य होना चाहिये और यही संकल्प भी।

<u>निश्कर्श</u>: जम्मू–कश्मीर राज्य में राजभाषा हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। पिछले साठ वर्षों में परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। हिन्दी दृढ़ता के साथ विकास की विभिन्न अवस्थाएँ पार कर जनमानस के समीप आ रही है। इस में सन्देह नहीं कि राजभाषा किसी भी देश के राष्ट्रीय सम्मान एवं अखण्ड राष्ट्रीय गौरव की प्रतीक होती है। राजभाषा हमारी पहचान है और जीवित अस्तित्व का प्रमाण है, एक राष्ट्र के वजूद का प्रतीक। विभिन्न राष्ट्रों के सम्माननीय राजनेता और अतिथि जब हमारे देश में पधारते हैं तो अंग्रेज़ी भाषा की जानकारी होते हुए भी वे अपने देश की राष्ट्रभाषा का प्रयोग कर उसे गौरवान्वित करते हैं। प्रश्न भाषा का नहीं, प्रश्न राष्ट्र की प्रतिष्ठा का है अतः विदेशी भाषा का गुणगान और जयजयकार करना छोड़कर हमें स्वदेशी राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के प्रति अपने कर्तव्यकर्म का निर्वाह करना चाहिये। इसी में हमारा <u>आज</u> और हमारा <u>कल</u> सुरक्षित रह पायेगा।

(19 जनवरी, 2007 ई॰)

'कश्मीर हिन्दू संस्कार'- सांस्कृतिक उपलब्धि

(धर्म विधि, कर्म कांड एवं रीति रिवाज)

श्री सोमनाथ पण्डित द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखित पुस्तक के प्रमुख आकर्षण

शुद्धि करने वाला कोई भी कृत्य, अथवा मांझ कर चमका देने वाला कोई कर्म संस्कार कहलायेगा। इस शब्द की अन्तरात्मा में मानव शुद्धि, सुधार, पाप प्रक्षालन, आत्मज्ञान एवं परमार्थ बोध के अर्थतत्त्व निहित हैं। सामान्यतः हम कह सकते हैं कि संस्कार का शाब्दिक अर्थ है–पवित्रीकरण, पापादि का प्रक्षालन करने वाला कृत्य।

हज़ारों वर्षों से विकसित कश्मीर संस्कृति के इतिहास का गहन अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनमानस ने अपनी बौद्धिक और सर्जनात्मक शक्ति के बल पर भावी पीढ़ियों के लिये अपार ज्ञान भण्डार पीछे छोड़ा है और विभिन्न युगों में इस में उत्तरोतर वृद्धि होती रही। आज अपने पूर्वजों की यही देन हमारी पैतृक सम्पत्ति अथवा संस्कृति कहलाती है। श्री सोमनाथ पण्डित की अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक पुस्तक "KASHMIR HINDU SANSKARS (Rituals, Rites and Customs) - A Study" वस्तुतः हमारे सांस्कृतिक–सामाजिक जीवन के अद्‌भुत छविचित्र प्रस्तुत करते हुए हमें अपनी मूल्यवान परम्परा से जोड़ देती है। कश्मीरी पण्डित होने के नाते हमें अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं धार्मिक अनुष्ठानों की सम्यक् जानकारी होनी चाहिये। इस ज्ञानबोध के आधार पर हम अपनी जातीय विशिष्टता को सुरक्षित रख

सकते हैं।

श्री सोमनाथ पण्डित ने सन् 1983 ई॰ में इस दिशा में प्रथम प्रयास किया है जब कश्मीर विश्वविद्यायल के कश्मीरी – विभाग, जहाँ श्री सोमनाथ वरिष्ठ अनुसंधित्सु के रूप में सेवारत रहे, के द्वारा कश्मीरी भाषा में उन की पुस्तक 'कॉशस्यन बटन हंद्य रस्म त स्यवाज' नस्तालीक़ लिपि में प्रकाशित हुई। यह उन का इस दिशा में प्रथम प्रयास था। इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था कश्मीर विश्वविद्यालय के कश्मीरी विभाग ने की थी। पिछले 23 वर्षों के निरन्तर अध्ययन, खोज एवं परिश्रम करने के बाद आज 461 पृष्ठों पर अंग्रेज़ी भाषा में लिखित प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन सम्भव हो सका है।

पुस्तक का प्रकाशन 'जेमनी कम्प्यूटर्स' जम्मू के द्वारा 2006 ई॰ में हुआ। मुद्रण कार्य ज़े. के. आफसेट प्रेस दिल्ली से हुआ है और मूल्य है – रुपये 475/ पृष्ठ संख्या – 461। आवरण पृष्ठ पर कलश, दिवतमून, मंडुल, क्षेत्रपाल, दीप स्थान, अग्निशाला में अग्निकुंड का स्थान, आकृति एवं दिशा को चित्रित किया गया है। पुस्तक के अन्त पर आवरण पृष्ठ पर 'अन्तिम संस्कार' के समय कलश–स्थापना की विधि दिखाई गई है।

संस्कारित होना प्रगतिशील समाज के लिये नितान्तावश्यक है। हमें यह भी ज्ञात होना चाहिये कि संस्कार द्विजातियों के शास्त्रविहित कृत्य है जो मनु के अनुसार बारह और कश्मीरी पण्डितों के विश्वासानुसार चौबीस या सोलह हैं।

कश्मीरी पण्डितों की संस्कृति का मूल मंत्र है – 'जियो और जीने दो' देखा जाये तो हमारी संस्कृति तो विराट आर्य– संस्कृति का ही एक विशिष्ट उन्नत और ख्यातिप्रद अंग है। हज़ारों वर्षों से एक सारस्वत ब्राह्मण समुदाय एक विशिष्ट पर्वतीय भू–खण्ड में रहता चला आया है जहाँ नाग, यक्ष, पिशाच और बाद में वैदिक आर्य एक साथ रहते थे। मुख्यधारा से हटकर अलग हो जाने के कारण विशिष्ट भौगोलिक और प्राकृतिक सीमाओं के भीतर रहते हुए समय–समय पर नवीन तत्त्वों और गुणों का समावेश इन के सांस्कृतिक जीवन में हुआ।

यही कारण है कि कश्मीर मंडल में विकसित आर्य संस्कृति 'कश्मीरी पण्डित संस्कृति' के नाम से चर्चित रही है। एक और बात की ओर आप सब बन्धुओं का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। संस्कार, रीति–रिवाज, परम्परा तथा रूढ़ि शब्द समानार्थी नहीं हैं। संस्कार (Purification, Refinement, Mental impression(s) forming the mind) पवित्रीकरण का, रीति (customs) या रीतिरिवाज चलन अथवा परिपाटी का, परम्परा (Tradition) अविच्छिन्न चलते आये हुए अटूट सिलसिले का अथवा प्रथा का तथा रूढ़ि (stereo typed, convention) रूढ़ हो चुकी परम्परा या रूढ़िबद्ध धारणा का द्योतक है।

लेखक बन्धु ने धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान (Rituals)[1], कर्मकांडी अनुष्ठान (Rites)[2] तथा प्रथा, रीतिरिवाज (customs)[3] के आधार पर कश्मीरी हिन्दू संस्कारों का विस्तृत तथा तर्क सम्मत ब्योरा प्रस्तुत किया है।

विषय वस्तु को सत्रह (17) अध्यायों में बाँट कर क्रमबद्ध रूप से ऐतिहासिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। जन्मपूर्व संस्कार तथा जन्म लेने के बाद संस्कार, शैशव काल में सम्पन्न किये जाने वाले संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, यज्ञोपवीत का धार्मिक्र, दार्शनिक एवं सामाजिक महत्त्व, गायत्री का अर्थ, तीन ऋण (पितृऋण, देवऋण, ऋषि ऋण), विवाह तथा विवाहोत्सव पर मनाये जाने वाले रस्म और रिवाज, विश्वास और मान्यताएँ, विवाहोत्तर मनाये जाने वाले उत्सव एवं धार्मिक कृत्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ एवं संन्यास तथा 'अन्तिम संस्कार' जिसे मैं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार समझता हूँ,

---

1. Rituals - धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान, प्रक्रिया, कर्मकांड, धर्मविधि, कार्यविधि।
The manner of performing divine services, The performance of rites.
2. Rite – धर्म विधि (Religious procedure)
A term first used by a French anthropologist Arnold Van Gennep for any of the ceremonies such as those associated with birth, puberty, marriage or death.
विशेष धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान
3. Custom – Any of the distinctive practices and conventions of a people or locality. What one is wont to do.
प्रथा, रीतिरिवाज, रिवाज, दस्तूर, आचार व्यवहार, परिपाटी

शस्त्रीय दृष्टि के साथ–साथ लोक विश्वास पर आधृत मान्यताओं के सन्दर्भ में लेखक ने इन विषयों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला है।

किसी एक वर्ष के भीतर हम किन दिनों को शुभ मानते हैं और क्यों तथा विशिष्ट शुभ दिन पर हम कौन सा धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान श्रद्धावश सम्पन्न करते हैं अथवा उस उत्सव विशेष की क्या सामाजिक उपयोगिता या महत्त्व है, लेखक ने श्रमपूर्वक सभी दृष्टियों से इन तथ्यों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि हम उन से हर बात पर सहमत हो। 'नवरेह' 'ज्येष्ठ अष्टमी,' श्रावण पूर्णिमा', 'जन्माष्टमी', 'शारदा अष्टमी', 'शारिका जयन्ती', 'गुरुपूर्णिमा', 'वितस्ता त्र्योदशी', 'अनन्त चतुर्दशी', 'दुर्गाष्टमी', 'साहिब सप्तमी' एवं शिवरात्रि उत्सवों का सम्बन्ध हमारे धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं के साथ है।

हमारे सामाजिक उत्सवों मे 'ज़ंगत्रय', 'सोन्थ', 'थाल बरुण', 'गौरी तृतीया', 'क्ष्यचरि (खिचड़ी) अमावस्या', 'कावपुनिम', 'श्रीभट्ट दिवस' एवं 'रक्षाबन्धन' उल्लेखनीय हैं। प्रकृति सम्बन्धी सामाजिक त्योहारों में हम 'सोंथ', 'वैशाखी', 'मेला बादामवारी', 'वहरात', 'हरुद', 'वितस्ता त्र्योदशी', 'शिशर संक्रान्ति', 'नवशीन', 'जतँ तँ', 'बसन्त पंचमी' हर्षोल्लास के साथ मनाते चले आये हैं। लेखक ने इन समस्त त्योहारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए समकालीन जीवन के सन्दर्भ में इन की प्रासंगिकता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। सांस्कृतिक परिदृश्य में त्योहारों की उपयोगिता पर भी विचार किया गया है।

विस्थापन के कटु यथार्थ का सामना करते हुए हमारी जाति ने अस्तित्वरक्षा के हेतु आत्मविश्वास के साथ संघर्ष किया और आज भी निरंतर कर रहे हैं। इतिहास में ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जहाँ बेघर होकर रिफ्यूजी जीवन जीने के लिए विवश एक जाति ने अपनी शक्ति को लक्ष्यप्राप्ति के हेतु सुरक्षित रखा हो। कश्मीरी पण्डितों ने आतंक का शिकार होते हुए भी अपनी प्रथा, रीतिरिवाज एवं धार्मिक अनुष्ठानों की अक्षुण्ण परम्परा को जीवित रखा। एक तम्बू में आश्रय लेकर 'वटुकनाथ भैरव' की पूजा की और शिवरात्रि पूजा की रीत को जीवित रखा। निष्ठा और आत्मविश्वास के बल पर सब कुछ खो जाने

के बाद भी दैव कृपा के प्रति आस्थावान रहे।

मुहूर्त, शुभवेला और अशुभ वेला, ग्रह (Planet) और नक्षत्रों (Star) की स्थिति, अन्धविश्वास और बदशगून तथा स्त्रीधर्म विषय पर भी लेखक ने जातीय मान्यताओं और विश्वासों के आधार पर विचार व्यक्त किये हैं।

बहुत सी बातें ऐसी भी हैं जो शताब्दियों तक दासता का जीवन जीने के कारण अथवा आतंकवादियों के नृशंस नर– संहार के कारण अथवा मातृभूमि से दूर रहने के कारण विलुप्त हो चुकी हैं अथवा हमारी दिनचर्या से अलग हो गई हैं। लेखक ने अपनी सांस्कृतिक पूंजी के अनमोल मौक्तिक कणों को समेट कर इन्हें क्रमबद्ध प्रस्तुत करते हुए विषाक्त वर्तमान को इसके स्वर्णिम अतीत के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। कश्मीरी पण्डित के जीवन का वैशिष्ट्य क्या है, उस में संस्कारबोध कितना गहन, प्रभावशाली एवं प्रेरणादायक है तथा वह अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक सम्पदा के साथ कितना जुड़ा हुआ है–इन समस्त महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा प्राप्त होती है।

कश्मीरी हिन्दू लोकाचार पर आधारित तर्क सम्मत एवं ज्ञानवर्द्धक रचना का प्रकाशन बहुत समय के बाद हुआ है। श्री मोहन लाल 'आश' ने 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' शीर्षक से सन् 2002 ई० में एक पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी भाषा में किया लेकिन बहुत अधिक संक्षिप्त रूप में बात कहने के कारण बात की तह तक नहीं पहुँच पाये, बात चबा गये। जिस ने इस पुस्तक को हिन्दी भाषा में रूपान्तरित किया उस की बात पर जा कर बात का ओर–छोर ही खुल न पाया, बात बिगड़ गई।

पण्डित ओंकार नाथ शास्त्री ने 'हम और हमारे संस्कार' शीर्षक से सन् 2005 ई० में एक पुस्तक प्रकाशित की। शास्त्री जी ने निजी जानकारी के आधार पर हिन्दू संस्कारों पर एक उपयोगी परिचयात्मक रचना लिखी। यह केवल शुरुआत थी, आरम्भिक प्रयास।

गहन अध्ययन के आधार पर पुनः परीक्षण करते हुए विस्तार के साथ लिखने का प्रशंसनीय प्रयास पण्डित सोम नाथ जी ने किया और इस कार्य को पूरा करने में इन्हें कई वर्षों तक साधनारत रहना पड़ा।

संस्कारों पर कार्य करते समय तीन तत्त्वों के प्रति सावधना रहने की आवश्यकता है।

(1) संस्कारों का धार्मिक महत्त्व एवं अनुष्ठान सम्पन्न करने की विधिविशेष, (2) संस्कारों का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य जिस के अंतर्गत संस्कार–विशेष के ऐतिहासिक विकास पर विचार करते हुए इस की व्यावहारिक उपयोगिता पर प्रकाश डाला जाता है तथा (3) संस्कारों का सामाजिक पहलू जिस के अंतर्गत संस्कारों की सामूहिक रूप से समाजिक स्वीकृति पर भी विचार किया जाता है। आज कल संस्कारों के वैज्ञानिक पहलू की भी चर्चा हो रही है।

उदाहरणस्वरूप हम यज्ञोपवीत संस्कार को ले सकते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद बालक धार्मिक दृष्टि से पण्डित बन जाता है–कर्मकांडी द्विज। उसे दूसरा जन्म प्राप्त होता है। सांस्कृतिक दृष्टि से वह अपने वंश और वंश मर्यादा के साथ जुड़ जाता है और सामाजिक दृष्टि से वह जीवन व्यवहार निबाहने का अधिकारी हो जाता है यज्ञोपवीत और विवाह संस्कार से पूर्व 'देव गोन' (गोन–>गुन–>गुण) की क्या उपयोगिता है इस के धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भ क्या हैं, इत्यादि बातों पर भी विचार करना आवश्यक बन जाता है। जहाँ लड़के का जन्म–अशौच जातकर्म संस्कार के समय समाप्त हो जाता है वहाँ लड़की का जन्म–अशौच 'देव गोन' पर ही समाप्त हो जाता है।

मेरा विचार है कि यज्ञोपवीत अथवा विवाह से पूर्व 'देव– गोन' की विशेष उपासना में देवी देवताओं का मंत्रों द्वारा आह्वान कर तथा उन का स्तुतिपाठ कर आशीर्वाद प्राप्ति की विशेष चेष्टा की जाती है। 'खिचड़ी अमावस्या' (ख्यचि़मावस–पौष अमावस्या) को मैं सौहार्दपूर्ण जीवन निर्वाह करने का त्योहार मानता हूँ। यह शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व का त्योहार है जो नागों, पिशाचों, यक्षों और अपने आप को सुसभ्य कहने वाले आर्यों को परस्पर सद्भावनापूर्ण व्यवहार के बन्धन में बान्ध देता है।

'व्यथ त्रुवाह' (व्यथ वातुर यात्रा) भाद्र शुक्ल पक्ष त्रयोदशी– इस उत्सव के विषय में यह लोक विश्वास है कि इस दिन माता पार्वती

(शक्ति माँ) स्वयं वितस्ता के रूप में जल स्वरूप भू–लोक पर अवतरित हुई। नील कुंड से प्रवाहित होकर यह भू–गर्भ में अदृश्य हो जाती है और कई मील भूमि गर्भ में चल कर वेरीनाग के निकट पुनः भूमि पर प्रवाह प्राप्त कर लेती हैं। इसीलिये कल्हण पण्डित ने कहा है – VITASTATRA वितस्ता + अत्र (यहाँ, इस जगह से) वितस्तात्र – व्यथ वातुर।

जीवनदायिनी शक्ति के रूप में प्रवाहित वितस्ता को इस के महात्म्य के कारण दैवी शक्ति के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई और हर वर्ष वितस्ता के उद्‌भूत दिवस के रूप में भाद्र शुक्ल पक्ष त्रयोदशी को एक विशिष्ट त्योहार मनाया जाने लगा। इस दिन हर गाँव के निकट वितस्ता के घाट पर देवी माँ को संतुष्ट करने के लिये और उन की कृपा का प्रसाद पाने के हेतु पूजा अर्चना की जाती थी और देवी को क्षीर, पुष्प, फल एवं अन्य पकवान समर्पित किये ज़ाते थे। सायम्‌काल पत्तों के दोनों में जलते दीप भी वितस्ता में बहाये जाते थे।

वितस्ता साक्षी है उन समस्त तूफ़ानों की जो पिछले एक सहस्र वर्षों में मूल कश्मीर वासियों को घाटी में झेलने पड़े हैं। देवी माँ ने अपने गर्भ में हज़ारों–हज़ारों साहसी सपूतों को असंख्य एवं अलभ्य सांस्कृतिक स्रोतों के साथ शरण दी है जिन में धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र से सम्बन्धित रचनाएँ, शारदा लिपि में लिखित पाण्डुलिपियाँ, देव प्रतिमाएँ, शिवलिंग, मन्दिरों के भग्नावशेष, मन्दिरों के कलश (कलस), देवस्थल एवं मूर्तिशिल्प के असंख्य नमूने उल्लेखनीय हैं। इतिहास जब करवट बदलता है तो देखते ही देखते विश्वासों के स्तूप ढह जाते हैं।

खेती से जुड़े विशेष मुहूर्त (बसन्त से शरद तक) भी पुस्तक में व्याख्यायित हैं।

हमारी संस्कृति का मूल मंत्र रहा है–

सर्वे भवुन्त सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।

या

सर्व मंगल मांगल्य शिवे सर्वार्थ साधिके

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते।।

यही सर्वकल्याण और सामूहिक हित की बात वस्तुतः आज 'शान्तिमय सहअस्तित्व' के रूप में विकसित होकर हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य को रेखांकित करती हैं।

हम सदा शान्तिप्रिय रहे हैं क्योंकि हम विनाश में नहीं अपितु विकास में विश्वास रखते हैं। हम किसी का जन्मसिद्ध अधिकार उस से छीनना नहीं चाहते क्योंकि हमारा विश्वास यह है कि हम किसी को जीवन दे नहीं सकते अतः किसी का जीवन लेने का अधिकार हमें नहीं है।

कितने महान आदर्शों को हम अपनी आस्था, संकल्प और विश्वास के शक्तिकणों से सींच रहे हैं। पुस्तक के अन्त में सहायक पुस्तक सूची के साथ–साथ 16 पृष्ठों पर अनुक्रमणिका जोड़ कर लेखक ने पाठकों की सुविधा के हेतु सन्दर्भसूची प्रस्तुत की है। यह काम भी सराहनीय है क्योंकि किसी भी पुस्तक की अनुक्रमणिका बनाने के हेतु पर्याप्त परिश्रम एवं सूझबूझ की आवश्यकता पड़ती है। मुझे विश्वास है कि "Kashmir Hindu Sanskars" धर्म, संस्कृति, इतिहास और सामाजिक जन जीवन के विविध पक्षों की सम्यक् जानकारी प्रदान करने हेतु एक उपयोगी सन्दर्भग्रन्थ सिद्ध होगा। समाज में इस प्रकार की ज्ञानवर्धक रचना की अत्यंत आवश्यकता थी और इस की पूर्ति के हेतु विद्वान पण्डित ने पूरी तन्मयता के साथ संतुलित दृष्टि अपनाते हुए विषय के विविध पक्षों पर विस्तारपूर्वक लिखा है। इन्हें कहाँ तक अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई है इस का निर्णय विज्ञपाठक एवं समर्थ आलोचक ही कर सकते हैं।

मेरा निवेदन यह है क़ि पुस्तक का अध्ययन किये बिना कोई राय प्रकट करना उचित नहीं होगा। आवश्यकता इस बात की है कि पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाये और पढ़ने के बाद ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की जाये।

हमारे समाज के लिये यह पुस्तक ज्ञानवर्द्धक होने के साथ–साथ बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी नज़र में लेखक

बधाई के पात्र हैं। सन् 2006 ई॰ में तीन महत्त्वपूर्ण रचनाएँ जम्मू में लोकार्पित हुईं।

1. 'कश्मीर की सन्त परम्परा' – 'भगवान गोपीनाथ आश्रम', सम्पादक – डॉ॰ भूषणलाल कौल

2. 'Kashmir Hindu Sanskars- सोमनाथ पण्डित

3. तीसरी पुस्तक 'ललद्यद : मेरी दृष्टि में' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को श्रीमती बिमला रैणा ने लिखा है। पुस्तक पाठालोचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

(28 सितम्बर 2006)

'नींव! तुझे नमन' : पुस्तक पुनरवलोकन

(कवि-डॉ. महाराजकृष्ण 'भरत')

कश्मीर से विस्थापित समकालीन अहिन्दी भाषा–भाषी हिन्दी कवि हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेशों में जी रहे प्रबुद्ध–जागरूक कवि मानस से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ भी अपने अस्तित्व बोध की पीडा से त्रस्त अलग पहचान को बनाये रखने के लिये भरसक प्रयत्नशील है। हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्रों के समकालीन हिन्दी कवियों ने वह सब कुछ न देखा है, न भोगा है, न समझा है और न सहा है जो पिछले अट्ठारह वर्षों से हम निरन्तर सहते चले आ रहे हैं। 'कश्मीर भारत का अटूट अंग है' से लेकर 'हिन्द–पाक़ को बैठकर कश्मीर 'समस्या' का निदान खोजना होगा' तक इतिहास ने कई करवट बदल लिये हैं।

अहिन्दी भाषा–भाषी कवि–मानस की अभिव्यक्ति अन्य प्रबुद्ध समकालीन कवियों से भिन्न भी है और विशिष्ट भी। डॉ॰ महाराजकृष्ण 'भरत' स्वयं विस्थापन की यातना सहते हुए खतरों के साये में पनप रहे मानवीय सोच की अकल्पित सम्भावनाओं को तलाश रहे हैं। विस्थापित जनमानस से जुड़ी एक–एक अनुभूति उन्हें सर्जन के हेतु प्रेरित करती हैं। यहाँ न महानगरीबोध की समस्या है और न बदलते रिश्तों का तनाव, न आसमानी बादशाहत का ज़िक्र है और न शब्दों में नये अर्थ जोड़ने की विवशता। यहाँ कवि इतिहास के झूठ को ज़िन्दगी के सच के साथ जोड़कर शब्दबद्ध करने का प्रयास कर रहा है। 'भरत' आकाश–कुसुम चुनने वाले किसी प्रतिष्ठित जन अथवा जननायक की कृपा से नहीं अपितु एक श्रमजीवी सृजनकर्ता अपने ही रक्त की बूँदों से निज संसार रचने वाले एक अनुभूति–प्रवण साहित्यकार के रूप में

पर्याप्त चर्चित हैं।

'नींव! तुझे नमन' काव्य–संग्रह पिछले अट्ठारह वर्षों के विपदग्रस्त विस्थापित जन–जीवन के अश्रुसिक्त यथार्थ को तड़पा देने वाली मनः स्थितियों के साथ जोड़ कर मुखर कर रहा है। डॉ० भगवती प्रसाद निदारिया (सम्पादकः 'युग स्पन्दन' करोल बाग, नई दिल्ली) ने 'कश्मीर का दर्द' शीर्षक से भूमिका लिखकर रचना को गौरवान्वित किया है।

प्रस्तुत काव्य–संग्रह में 55 कविताएँ निम्नलिखित चार उपशीर्षकों के अंतर्गत संगृहीत हैं–

(अ) नाड़ीमर्ग के गूंगे लोग – 15 कविताएँ
(आ) एक दशक बाद अपने गाँव में – 13 कविताएँ
(इ) मेरे विस्थापित कैम्प में ज़रूर आना – 22 कविताएँ
(ई) स्मृति शेष – 5 कविताएँ

'निर्वासन साहित्य प्रकाशन' द्वारा सन् 2006 ई० में 133 पृष्ठों का प्रस्तुत काव्य–संग्रह प्रकाशित हुआ। पुस्तक का मूल्य 150 रुपये है। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मार्तण्ड मन्दिर (कश्मीर) के भग्नावशेष इतिहास के उलटफेर की साक्षी दे रहे हैं। प्रस्तुत काव्य–संग्रह की मुख्य संवेदना विस्थापन की यातना से जुड़ी है। निदारिया जी के शब्दों में 'दरअसल 'भरत' की कविता को समझना, कश्मीर के दर्द को समझना है। (भूमिका–'नींव! तुझे नमन')

वस्तुतः इतिहास की इस भीषण दुर्घटना ने ही भरत जी के रचनासंसार को एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। भीषण यथार्थ से दोचार होकर ज़िन्दगी जीना बड़े साहस का काम है और भरत ने साहसी बन कर ज़हर पचा ही लिया। भरत जी विस्थापितों के मध्य सक्रिय हैं, दौड़ धूप में लगे हैं। जनसम्पर्क में हैं अतः रोज़ के अनुभव उन्हें सृजन के हेतु प्रेरित कर रहे हैं। यह उन का भोगा हुआ यथार्थ है।

भरत की इन रचनाओं का एक आकर्षण इन की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति में निहित है। यहाँ अभिव्यक्ति अव्यावहारिक नहीं है, अबोध्य प्रतीकों की योजना नहीं है, दुरुह शब्द प्रयोग नहीं हैं।

बहुधा अभिव्यक्ति अतुकांत होते हुए भी मर्मस्थल को छू लेती है। काव्य लय का उन्होंने विशेष ध्यान रखा है। कहीं–कहीं ऐसा लगता है कि यह विचारप्रधान कविता है जो हमारे वर्तमान के सच और झूठ को एक साथ उजागर करके व्यवस्था पर हथौड़े से प्रहार कर रही है। वह इस व्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने के लिये आतुर है। दो–तीन उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(1) *'इतिहास लिखने वाले*
सभी कल्हण नहीं हुआ करते
शाहमीर और बुत्तशिकन
भी होते हैं।' (पृ॰–47)

(2) *'निर्वासित नहीं है केवल माँ*
निर्वासित हो गए हैं उस के
पर्व/त्योहार
संस्कृति/संस्कार
काक पट्टी का स्थान।' (पृ॰–104)

(3) *'उम्र क़ैद बिता चुकीं*
विस्थापितों की 'फाइलें
गायब हैं कार्यवाही से' (पृ॰–41)

(4) *'मेरे लोकतांत्रिक देश में*
देश भक्ति
किसी तम्बू में छिपकर
अपने ही देश में शरणार्थी हो गई है
दासता से मुक्ति का पचासवाँ पर्व
मना रहा है देश।' (पृ॰–103)

भरत जी ने प्रस्तुत काव्य–संग्रह में संक्षिप्त आकार की कविताएँ भी लिखी हैं। मैं इन्हें 'मिनी कविता' कहता हूँ। लघुचित्र कला (Miniature Art) के ये आकर्षक नमूने हैं। कभी–कभी अदब भी फ़ैशन का शिकार हो जाता है। कथात्मक साहित्य में 'मिनी' रचनाओं का स्वागत होने लगा, लेखक उत्साहित हुए। इस में रेडियो और टेलीविजन की भी

महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जो लेखक को हिन्दुस्तानी रुपये में खरीद कर डॉलर या पौंड स्टरलिंग के मोल बेचते हैं। समय की पाबन्दी का लालफीता यहीं से साहित्यकार की लेखनी के साथ बन्ध गया। यह रचनाकार की प्रतिभा पर निर्भर करता है कि पेंसली रेखाओं के द्वारा वह पाठक के मानसपटल पर एक रेखाचित्र उकेर दे। यह बिल्कुल एक फ्लैश है। आप की नज़र क्षण भर देखकर इसे पहचान पाई तो अर्थ का सौन्दर्य बालरवि की अछूती रश्मियों के समान मनोहर दिखने लगता है। बहुधा इन रचनाओं में व्यंग्य–विनोद की प्रधनता अथवा प्रबलता रहती है।

इस प्रकार की कई रचनाएँ प्रस्तुत काव्य–संग्रह में देखने को मिलती हैं। 'एक तम्बू में', 'कश्मीरी पण्डित', 'निर्वासन में रिश्ते', 'संसद से सीधा प्रसारण' एवं अनिश्चितता' इस दृष्टि से उल्लेखीय रचनाएँ हैं–

'मिनी' कविता के तीन उदाहरण देखने योग्य हैं–

(1) *'मैं वोट बैंक नहीं हूँ*
इसीलिये लावारिस हूँ।'

('कश्मीरी पण्डित' पृ॰–111)

(2) *'पहले हम*
दिल की चौखट पर मिलते थे
अब किसी के दसवें
किसी की बारात में।'

('निर्वासन में रिश्ते' पृ॰–112)

(3) *'इस मूसलाधार बारिश में*
ढीली पड़ गई हैं
टेंट की रस्सियाँ
घर के घरौंदे
बह रहे हैं।
माँ वितस्ता बन गई है।'

('स्मृति शेष–तीन' पृ॰–130)

भरत जी की रचनाओं में सदियों का मूक इतिहास मुखर हो

रहा है। उत्कृष्ट अभिव्यक्ति, गहनानुभूति, कथन का चातुर्य, मर्मस्पर्शी भाषा व्यवहार, लोकानुभूति की पहचान, दुर्घटनाग्रस्त जन समुदाय की पीड़ा, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, रिश्वती व्यवहार चक्र, सियासी बौनापन, विश्वासों के प्रति अनास्था और अन्य कई महत्त्वपूर्ण चिन्तन धारायें इन रचनाओं को आकार प्रदान करती हैं।

30 सितम्बर 2000 ई॰ के दिन करगिल से कश्मीर के रास्ते बस में जम्मू आते हुए उन्हें बालतल सोनमार्ग से बानिहाल टनल तक 7–8 घण्डे कश्मीर घाटी से गुज़रना पड़ा। स्मृतियों के शान्त समुद्र में अकस्मात् तूफ़ान बरपा हो जाता है। 'तुम्हारी याद' शीर्षक कविता जन्म लेती है। कई ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के विषय में सोचते–सोचते कवि हब्बाखातून और अरणिमाल की याद में खो जाता है। उन्मादग्रस्त आतंकियों की नज़रों से अपने मासूम एहसास को बचाते हुए वह जन्मभूमि की याद को हृदय के भीतरी प्रकोष्ठ में सुरक्षित रखने के लिये बेचैन हो उठता है–

तुम्हारी याद–
सावन के बूंदों की प्रतीक्षातुर
चातक की तड़प है
किसी रेगिस्तान में बरसात की प्रतीक्षा।
***
तुम्हारी याद
हब्बाखातून की प्रतीक्षा है
अरणिमाल के दर्द की टीस है
माँ के स्पर्श का एहसास खोजती
किसी बच्चे की उत्सुक नज़र है।

(पृ॰–79–80–81)

इस दृष्टि से 'मेरे विस्थापित कैम्प में ज़रूर आना', 'काली बर्फ', 'वे जब आते हैं हमारी बस्ती में', 'लोहा', 'नागपाश' तथा 'नींव! तुझे नमन' शीर्षक रचनाएँ पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं।

भरत जी ने प्रस्तुत संग्रह में कुछ आँचलिक कविताएँ जोड़ दी

हैं। मैं सोच समझ कर ही 'आँचलिक' शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में कविता के साथ कर रहा हूँ। इन कविताओं के कथ्य को तब तक समझा नहीं जा सकता जब तक इन में प्रयुक्त विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली की सम्यक् जानकारी न हो। निस्संदेह इन रचनाओं का अपना महत्त्व है लेकिन सही सन्दर्भों की पहचान आवश्यक है। दो एक शब्द ऐसे हो तो काम चलाया जा सकता है लेकिन जहाँ असंख्य शब्द या शब्द खण्ड इतर भाषाओं से लिये गये हों वहाँ रचना के मूल कथ्य से परिचित होना मुश्किल हो जाता है। प्रस्तुत संग्रह में 'ज़ोजिला के इस पार', 'आत्म मंथन' एवं 'जंजघर' कविताएँ इस दृष्टि से विचारणीय हैं। 'आत्म मंथन' कविता से एक उदाहरण देखिये–

'हम से छीन कर
हमारी धरोहर
बदलते ऋतुओं का एहसास
अठखेलियाँ
चिलयकलान की ठंड
शिशर गँट का स्वाद।
'शीरचाय' की चुस्कियाँ लेते हुए
फिरन में कांगडी से अपने बदन को ताप कर
बर्फ के फाहों का आनन्द लेने से
हम वंचित रह गये'।

(पृ॰ 59–60)

लेखक ने कुछ पारिभाषिक शब्दों के अर्थ फुटनोट में अवश्य दिये हैं लेकिन मेरी आपत्ति इस बात पर है कि इस प्रकार के बहुल शब्द–प्रयोग से आदर्श भाषा का रूप विकृत हो जाता है। यद्यपि हम 'आरिया' और 'जारिया' की ऊबड़–खाबड़ पगडंडियों से बहुत आगे निकल चुके हैं तथापि विशिष्ट भाषा या बोली का मोह कभी–कभी हमें कठघरे में भी खड़ा कर सकता है।

प्रत्येक कविता के साथ ऐतिहासिक सन्दर्भ जुड़े हैं। हर कविता का अपना विशिष्ट इतिहास है। 'वॅन्दहामा का लाक्षागृह', 'नाड़ीमर्ग के

गूँगे लोग', 'एक दशक बाद अपने गाँव में', 'हीलिंग टच', 'रिलीफ कमीश्नर', 'शेरवानी', 'मेरे विस्थापित कैम्प में ज़रूर आना' आदि रचनाएँ कई ऐतिहासिक सन्दर्भों, दुखद घटनाओं, वीर देशवासियों एवं क्षुद्र नौकरशाही के प्रतिनिधियों की अविश्वसनीय सत्य कथाओं से जुड़ी हैं।

कश्मीर में जब सन् 2001 ई॰ में 'संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चा' (यू–डी–एफ) की सरकार बनीं तो 'हीलिंगटच' शब्द नये अर्थबोध के साथ व्यवहार में लाया जाने लगा। 'आंतकी' के बदले 'गुमराह नौजवान' का सम्बोधन तथा 'बन्दूक छोड़ पुनर्वास' का आश्वासन लेकर नेताजन गाँव–गाँव पहुँचकर स्वागत समारोहों में भाग लेने लगे। लाखों विस्थापितों की न उन्हें तब कोई चिन्ता थी और न अब है। 'हीलिंग टच' शब्द में अकस्मात् अर्थ संकोच हो गया।

अपने ही देश में 'रिफ्यूजी' बन कर जीने की विवशता सहते हुए आज लाखों भारतवासी कुटनीतिक दुष्चक्रों का शिकार बन कर शक्तिहीन राजनीतिज्ञों की' कुर्सी बचाओ' एजंडा (कार्यावली) के आगे एक नहीं कई प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं। शिवजी की नगरी आनन्दवन (बनारस) में आतंकियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करादी। वे कहाँ नहीं पहुँच रहे हैं और क्यों न पहुँचे! आख़िर यह कोई छोटी बात है कि हम ने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है। अट्ठारह वर्षों से निरन्तर संघर्षरत भारत का लुटापिटा समाज अपने भूत के विनाश पर, वर्तमान की दुर्दशा एवं भविष्य के अनिश्चय पर शोकाकुल है। स्वयं 'भरत' के शब्दों में–

'तुमने यदि नहीं देखा हो
रोटी सेंकते तवों का ताप
बरतन में उबलते हुए
पानी के गर्म छींटों का एहसास
जन भावनाओं के उमड़ते हुए ज्वार को
तो मेरे विस्थापित कैम्प में
ज़रूर आना।
मैं तुम्हें यह सब कुछ दिखलाऊँगा
जिसे तुम देखना चाहते हो

जिसे तुम देखना नहीं चाहते
यह भी
वह भी।'

('मेरे विस्थापित कैम्प में ज़रूर आना', पृ॰–94)

डॉ॰ भगवती प्रसाद निदारिया ने प्रस्तुत काव्य संकलन के हेतु चार रेखाचित्र/पेंसिल स्केच तैयार किये हैं। प्रथम रेखाचित्र का शीर्षक 'नाड़ीमर्ग के गूँगे लोग' है। द्वितीय स्केच का शीर्षक 'एक दशक बाद अपने गाँव में' है। 'मेरे विस्थापित कैम्प में ज़रूर आना' यह शीर्षक है तीसरे स्केच का और चौथा स्केच है– 'स्मृतिशेष.....।' अत्यंत कलात्मक ढंग से निदारिया जी ने एक जन समुदाय की व्यथा को सांकेतिक चित्रों के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान किया है। भरत जी की चार कवितायें इन्हीं शीर्षकों से जुड़ी हैं।

तोड़े गये पूजा स्थलों की याद में भरत ने एक संक्षिप्त व्यंग्यरचना लिखी है–'साम्प्रदायिक–असाम्प्रदायिक'। वोट बैंक की राजनीति के कारण इन शब्दों में अर्थ परिवर्तन हुआ है। शब्दों के जीवन्त होने का तो यही प्रमाण है। सैकंडों पूजास्थल आज कश्मीर में दयनीयावस्था में हैं। कुछ एक तो 'सेक्यूलर' बन गये हैं, कुछ बिक चुके है। 'गुप्तगंगा' गुप्त हो गई है और महाकाली जाने कहाँ कूच कर गई। यदि विस्थापित अल्पसंख्यक एक वोट बैंक होता तो संसद में होती घन गर्जना और छाती पीटते दिखते भारत माँ के धन कमाऊं सपूत–

'तुम को तोड़ने से बचाने के लिए
उमड़ पड़ते देश के 'सेकुलर'
तुम्हारी टूटन–जलन की व्यथा भी
संसद की आवाज़ बनती।
पर
न तुम्हारा टूटना साम्प्रदायिक
बन सका
न ही मेरे घर की नींव को हिला देना
'कम्यूनल'

वाह रे!
मेरे देश की
'धर्म से निरपेक्ष', हो गई आँख!

(पृ०–26–27)

'सच, सच और सच'! शीर्षक कविता के अभिप्रेत (अभिलषित, वांछित) से मैं सहमत नहीं हूँ। कवि तलाश रहा है आशा की उस किरण को जो महात्मा को कश्मीर में दिखाई दी थी। वह मानता है कि–

'सिरफिरे बेटों ने
धरती को रक्तिम कर दिया।'

(पृ०–67)

दूसरे ही क्षण वह उस की तलाश में निकलता है जो
'कैक्टसों को जड़ से उखाड़ देगा।
कौन है जो सिरफिरों की
करेगा मिट्टी पलीद

(पृ०–68)

प्रश्न यह उठता है कि हम स्वयं क्या कर रहे हैं? हम ने पिछले अट्ठारह वर्षों में क्या किया? हम में स्वयं जूझने का साहस क्यों नहीं है। कहीं कोई कमी हम में भी तो नहीं है। कवि लिखता है–

'माँ के दूध का ऋण कौन चुकायेगा?

(पृ०–68)

हम स्वयं क्यों न चुकाएँ? परमुखापेक्षी होना पाप है, निर्लज्जता है। जब तक यह एहसास हमारे भीतर नहीं पनपेगा। तब तक कई कफ़नचोर हमारे चेतना शून्य शरीर के ऊपर से कफ़न चुराकर हमें नंगा कर देंगे।

'भरत' एक निश्चित डगर पर चल रहे हैं। व्यक्ति उन के लिये उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना एक लुटापिटा समुदाय। भरत जी इस समुदाय की सम्पूर्णव्यथा वेदना अपनी रचनाओं के माध्यम से मुखर कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि ये रचनाएँ एक दिन ऐतिहासिक साक्ष्य बन कर समकालीन कश्मीर इतिहास के सही सन्दर्भों की पहचान करायेंगी।

भरत को आदर्श के शीशमहल से बाहर निकलना होगा तब क्रूर यथार्थ का पर्दाफाश होगा और ज़िन्दगी अपनी समस्त विसंगतियों के साथ जूझती, कराहती और तड़पती दम तोड़ती नज़र आयेगी।

बहादुर ज़िन्दगी में एक बार मरता है, बार–बार नहीं। 'भरत' का प्रयास स्तुत्य है। मैं इन के साहस के आगे झुक जाता हूँ। 'फिरन में छिपाए तिरंगा' (1995 ई॰) से लेकर 'नींव! तुझे नमन' (2006 ई॰) तक भरत निरंतर विस्थापित समाज की ट्रेजिड़ी से विह्वल होकर भीतरी आक्रोश को ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर बाह्याभिव्यक्ति प्रदान करता रहा। वह एक निश्चित् दिशा में आगे बढ़ रहा है। समकालीन भारत के आंतकी माहौल में निस्सन्देह 'भरत' की रचनाओं का अपना महत्त्व है।

आज कल हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेशों में हिन्दी कवि के द्वार पर आतंकी दस्तक दे रहा है। सम्भव है उस की गहन निद्रा भंग हो जाये। वह आसमान से पृथ्वी पर लौट कर आये।

इसी आशा के साथ

(29 नवम्बर, 2007 ई॰)

वनवुन, ह्यंज़े, हियमाल (श्री पुष्करनाथ रैणा)

कश्मीरी लोक साहित्य की अनुपम उपलब्धि

'वनवुन' शब्द का शाब्दिक अर्थ है–शुभवेला पर किसी विशेष संस्कार कर्म को सम्पन्न करते समय हर्षोल्लास के साथ ईश्वरीय शक्तियों का गुणगान अथवा देवी–देवताओं के प्रशंसापूर्ण उल्लेख के साथ भीतरी आनन्द को मुखर करते हुए स्त्रियों का समवेत गायन। इस परिभाषा के भीतर कई महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को एक साथ समेटने का प्रयास किया गया है। जैसे–

(1) 'वनवुन' महिलाओं का समवेत गायन है।

(2) 'वनवुन' पारिवारिक जीवन में आनन्द और हर्षोल्लास को द्विगुणित करता है।

(3) 'वनवुन' शुभ और मंगल का सूचक है।

(4) 'वनवुन' ईश्वरीय शक्तियों का गुणगान है।

(5) 'वनवुन' किसी विशेष समाज की भव्य ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा की पुनःस्मृति कराता है।

(6) 'वनवुन' हमारे धार्मिक और सामाजिक उत्सव को महिमामंडित कर देता है।

(7) 'वनवुन' में लोक भाषा, लोक कविता एवं लोक संगीत का अद्‌भुत मिश्रण रहता है।

(8) 'वनवुन' किसी समाज को अपनी सांस्कृतिक परम्परा के साथ जोड़ देता है।

(9) 'वनवुन' नव पीढ़ी के स्वर्णिमभविष्य की मंगलमय कामना सहित 'शुभस्य शीघ्रं' की पूर्वसूचना है।

'वनवुन' वस्तुतः महिलाओं का गायन है। इस में किसी भी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता। 'वनवुन' कश्मीरी लोकमानस का प्रतिबिम्ब है, लोक कविता (शाइरी) का एक अंग है। 'वनवुन' का कोई विशेष रचयिता (कवि/कवयित्री) नहीं होता है अपितु लोकमानस समय बदलने के साथ-साथ आवश्यकता और रुचि अनुसार इन गीतों में परिवर्तन कर देता है अथवा और पद या छन्द जोड़ कर श्रीवृद्धि करता है। यहाँ कोई कवि या लेखक प्रमुख नहीं रहता अपितु जन मानस सृजन के हेतु सक्रिय रहता है। अतः स्पष्ट है कि 'वनवुन' का कोई विशेष लेखक नहीं होता है।

जातकर्म (काहनेथर), नामकरण, चूडाकर्ण (ज़रकासय) यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों से नयी पीढ़ी को सम्पन्न करते समय घण्टों घर में 'वनवुन' गायन चलता रहता है। प्रत्येक धार्मिक सामाजिक संस्कार या सांस्कृतिक अनुष्ठान के अपने विशेष 'वनवुन' गीत हैं।

'वनवुन' गाते समय एक जानकार महिला गायन मंडली का नेतृत्व करती है। उसे नेत्री कहते हैं। कश्मीरी में 'वनवन वाज्यन' कहते हैं और यह महिला पेशावर/व्यवसायी भी होती है अथवा परिवार से जुड़ी कोई अनुभवी सम्बन्धिन्।

कश्मीरी पण्डितों के 'वनवुन' की एक विशेष लय/राग/ धुन होती है जो शास्त्रीय संगीत के बहुत निकट है। प्रत्येक पद/छन्द को विस्तार के साथ धीमी चाल में मानो संगीत की लहरियों पर सवार करके प्रस्तुत किया जाता है। युवा महिलायें धीरे-धीरे ही इस कला को सीखती हैं। निस्सन्देह 'वनवुन' गायन अपने आप में एक कला है और निरन्तर अभ्यास से ही कोई महिला इस में दक्षता प्राप्त कर सकती है। कश्मीरी मुस्लिम समाज में 'वनवुन' का अपना भिन्न स्वरूप है और इस्लामी संस्कृति के रंग में रंगा हुआ है। इस वनवुन का भी अपना सौन्दर्य है। मधुर गायन है जो वातावरण में गूँज उठता है लेकिन उस की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उतनी प्राचीन नहीं है जितनी कश्मीरी पण्डितों के 'वनवुन' की है।

'वनवुन' के साथ-साथ एक शब्द और विकसित हुआ है-

'वननावुन' अर्थात् महिलाओं के द्वारा 'वनवुन' के महात्म्य का सन्देश हर उपस्थित व्यक्ति के कानों तक पहुँचाना। परिवार के यश और बड़प्पन का गुणगान करना। भीतरी हर्षोल्लास को बाह्य अभिव्यक्ति प्रदान करना। इसी प्रकार एक और शब्द है – 'वनवन हुर' अर्थात् 'वनवुन' गायन का एक छन्द या बन्द या दो पंक्तियाँ या मिस्रा। 'हुर' कश्मीरी भाषा का अपना मूल शब्द है। इस शब्द के कई अर्थ हैं और उन में एक अर्थ है – 'वनवुन'। 'हुर त्रावुन' या 'हुर वनुन' या 'वनवन' हुर त्रावुन' या 'हुर' वननावुन' इस शब्द के विभिन्न रूप हैं। इस शब्द को संस्कृत के किसी मूल शब्द के साथ ज़बरदस्ती जोड़ना व्यर्थ है।

दो और शब्दों की चर्चा करना भी संगत होगा। ये शब्द हैं – 'वनवन' वाज्यन तथा 'वनवन' वाज्यॅनि। प्रथम शब्द नेत्री का वाचक है अर्थात् वह विशेष स्त्री जो 'वनवुन' गायन में नेतृत्व करती है और दूसरा शब्द उन महिलाओं का वाचक है जो उस विशिष्ट महिला के नेतृत्व में 'वनवुन' गाती हैं।

वह धनराशि, वस्त्र इत्यादि जो उस परिवार की ओर से नेत्री को भेंट स्वरूप दी जाती हैं उसे 'वनवन' द्यार कहते हैं। इस महिला विशेष को 'वनवुन' गॅर भी कहते हैं। वे समस्त महिलायें जो बैठ कर 'वनवुन' गाती हैं उन्हें 'वनवन काकनि' भी कहते हैं और उन में से किसी एक महिला को 'वनवन– ग्राकन्य' कहते हैं। स्पष्ट है कि वनवुन हमारे पारिवारिक जीवन के साथ जुड़ा है और हर्षोल्लास तथा प्रसन्नता के साथ–साथ वृद्धि और सिद्धि का भी द्योतक है।

मैं एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह हमारे लिये दुर्भाग्य की बात है कि धीरे–धीरे कश्मीरी पण्डित परिवारों से 'वनवुन' छूट रहा है। 'हॉय' और 'वॉय कल्चर ने हमें हर तरह से लूट लिया है। एक ज़माना था कि बारात घर में आते समय स्वागत हेतु स्त्रियाँ सैंकड़ों की संख्या में खड़े होकर 'वनवुन' गाती थीं और आज उसी अवसर पर युवास्त्रियाँ यूरोपियन डाँस, फिल्मी नाच तथा अश्लील नृत्य में मग्न रहती हैं। यह मूलतः सांस्कृतिक ह्रास का परिणाम है, विनाश का सूचक है। जो हमारे

पास श्रेष्ठ और मूल्यवान था वह हम से छिन्न चुका है। धीरे–धीरे हम अपनी ही परम्परा से अनभिज्ञ हो रहे हैं।

विस्थापन के बाद कश्मीरी वनवुन (विशेषकर कश्मीरी पण्डितों के वनवुन) के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिन में श्री सोमनाथ भट्ट 'वीर' कृत 'कॉशुर शास्त्रीय वनवुन', श्रीमती कमलावती द्वारा रचित 'लोल. वखनय' एवं श्रीमती लक्ष्मीश्वरी कांदरू लिखित 'हिंज़े वनवुन' उल्लेखनीय हैं। लेकिन इन्होंने केवल संग्रहकार्य किया है। व्याख्या, विश्लेषण, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि या सांस्कृतिक स्रोत को ढूँढ कर प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया है। सम्भवतः ऐसा करना संग्रह ग्रन्थ तैयार करने के लिये आवश्यक नहीं था।

दूसरी बात यह है कि किसी भी शोधार्थी ने आज तक इस विषय पर विस्तार से लिखने का प्रयास नहीं किया है। संस्कारों पर कई पुस्तकें सन् 1990 ई॰ के बाद प्रकाशित हो चुकी है, जिन में श्री मोहनलाल 'आश', ज्योतिषी ओम्कार नाथ शास्त्री एवं श्री सोम नाथ पण्डिता की रचनाएँ चर्चित रही हैं।

श्री पृष्कर नाथ रैणा का यह प्रयास स्तुत्य है। आरम्भ में विस्तृत भूमिका प्रस्तुत करते हुए इन्होंने वस्तुतः संस्कृति– बोध का परिचय दिया है। यहाँ यह बात मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि 'ह्यंज़े' कश्मीरी पण्डितों के वनवुन की प्रथम ध्वनिमय उद्‌बोधनात्मक अभिव्यक्ति है। 'ह्यंज़े' का शाब्दिक अर्थ है– हाँ जी, अरी ओ, ओ सखी, अरी, पुकारने में प्रयुक्त हे, ऐं या अरे। ध्यानाकर्षण के हेतु इस शब्द का प्रयोग कश्मीरी 'वनवुन' बन्दों (पदों) में सर्वप्रथम किया जाता है। 'आप तनिक मेरा साथ दीजिये' या 'मेरी ओर ध्यान दीजिये' यही तो इस सम्बोधन सूचक शब्द का अभिप्राय है।

लेखक ने 'ह्यंज़े की महिमा', 'ह्यंज़े वनवुन क्यों?' 'वननावुन क्या है ?' कश्मीरी पण्डितों के विवाह वनवन गीत' तथा अन्य महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार करके एक विशेष क्रम में वनवन गीतों का संग्रह प्रस्तुत किया है। संगृहीत वनवन गीतों के अंत में लेखक ने पुनः कई महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डाला है, जिन में 'व्यूग' (स्वागत–मंडल) 'टेक्य पूच़'

(स्त्रियों के लिये विशेष शीर्ष भूषा) 'जातकर्म या काहनेथर तथा अन्य अनेक विषयों पर विचार किया गया है।

वनवन गीतों में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावली या पारिभाषिक शब्दों को अर्थ सहित एक क्रम में प्रस्तुत किया गया है। वनवन गीतों के भावार्थ को समझने में विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों के अर्थ की जानकारी प्रस्तुत कर लेखक ने गीतों को सर्वग्राह्य बनाने का कार्य किया है और यह प्रशंसनीय भी है। कहीं–कहीं उन के साथ मतभेद भी हो सकता है लेकिन कुल मिलाकर उन की यह कोशिश प्रशंसनीय है। मैं इस तथ्य की ओर भी पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि लेखक ने देवनागरी लिपि में कश्मीरी भाषा लिखने कि लिये सर्वस्वीकृत मानक लिपि का प्रयोग नहीं किया है।

श्री पुष्करनाथ रैणा एक अनुभवी लेखक और रचनाकार हैं। प्रायः इन की रचनाएँ अंग्रेज़ी भाषा में समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रही हैं। सन् 2006 ई॰ में इन की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'परमसंत परमदयाल स्वामी गोविन्द कौल' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इस रचना में लेखक ने स्वामी गोविन्द कौल के व्यक्तित्व, कृतित्व, चिन्तन, विचारपद्धति, योगसाधना, एवं जीवन उपलब्धियों पर विस्तार से लिखा है। भक्तिपरक श्रद्धामय अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत पुस्तक पर्याप्त चर्चित है।

'ह्यंज़े वनवुन–हियमाल' पुस्तक का समाज में अवश्य स्वागत होगा, जन मानस के लिये यह श्रेयस्कर सिद्ध होगी और इस प्रकार एक कर्मयोगी लेखक अपने उद्देश्य में सफल होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं आलोचक बन्धुओं की प्रतिक्रिया को जानने हेतु भी प्रतीक्षारत रहूँगा।

(3 अक्तूबर, 2007 ई॰)

'पीड़ा अस्तित्व की' : पुस्तक-परिचय
(कवि प्यारे हताश)

'जो न किश्ती बचा सका अपनी
ऐसे लोगों को डूब जाने दो।' पृ०9

एक कर्मठ सर्जनात्मक कलाकार के रूप में प्यारे हंताश जम्मू—कश्मीर प्रदेश में पर्याप्त चर्चित हैं। अध्यवसायी, परिश्रमी, व्यवहारकुशल, नम्र स्वभाव के सौम्य पुरुष कश्मीरी और उर्दू भाषाओं के लेखक यदाकदा हिन्दी भाषा में भी अपनी रचनायें लिखते हैं। 'हताश' कवि, गद्यलेखक एवं एक कुशल अनुवादक हैं। साहित्य अकादमी द्वारा इसी वर्ष श्री अमृतराय द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द : कलम का सिपाही' नामक ग्रन्थ का प्यारे हताश कृत 1080 पृष्ठों का कश्मीरी अनुवाद "प्रेमचन्द कलमुक सिपाह" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। अनुवाद कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने में प्यारे हताश को बहुत परिश्रम करना पड़ा है।

वे मूलत: एक कवि हैं। उनके द्वारा उर्दू भाषा में लिखित ग़ज़लों के संग्रह 'कर्बे वजूद' (प्रकाशन वर्ष 2003 ई०) का देवनागरी लिपि में रूपांतरण "पीड़ा अस्तित्व की" शीर्षक से प्रकाशित हो रहा है। हताश अपनी पीड़ा के अनुभव से हिन्दी भाषी समाज को भी अवगत कराना चाहते हैं।

विस्थापन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रचे गये एक षड्यंत्र का दुखद परिणाम है। इस में दो मत नहीं हो सकते लेकिन बिना कारण एक शान्तिप्रिय समाज अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु देश

त्याग के लिये विवश हुआ और अपनी जन्मभूमि से सैंकडों मील दूर अपने ही देश में शरणार्थी बनकर जीवन जीने की यातना सह रहा है। पिछले 19 वर्षों का संघर्षमय जीवन हताश के मानस में व्यथा के उफ़ान को आक्रोश में बदल कर नस–नस में प्रवाहित कर देता है। उस ने अपनी आँखों से देखा है वह सब कुछ जिसे वह आज भी ज़बान पर लाने का साहस नहीं जुटा पाता। निर्मम हत्याएँ, दुष्टाचार, नारी अपमान, शिशुवध, आगज़नी, लूटमार और न जाने क्या–क्या।

सर्पदंश की मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव लगभग बीस साल के बाद देश (भारतवर्ष) का हिन्दी भाषी कवि आज कर रहा है क्योंकि आतंकी आज उसके गृह–द्वार पर दस्तक दे रहा है। पिछले 19 वर्षों से हम क्या सहते चले आये हैं उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, न उस ने लिखने का साहस किया। प्यारे हताश के शब्दों में–

'हम पे ढाये गये हैं हज़ारों सितम
कोई अपनी हमाकत पे पछताएगा।
मेरे चेहरे को देखें अगर गौर से
मेरा माज़ी बराबर याद आयेगा'।।

(पृ॰ 48)

प्यारे हताश की ग़ज़लों में जीवन का उत्साहपूर्ण वेग के साथ प्रवाहित है। उन का दृष्टिकोण नकारात्मक नहीं है, स्वीकारात्मक है। पिछले 18 वर्षों से जानलेवा स्थितियों से गुज़रते हुए कवि ज़िन्दगी के असहनीय यथार्थ को विषपायी बनकर आत्मसात् कर रहा है। यह सत्य है कि उसने सब कुछ खो दिया। एक लुटापिटा देशवासी विस्थापित कैम्प में जीवन जीने की यातना भुगत रहा है, मानस में आक्रोश की चिनगारियाँ सुलग रही हैं। कभी–कभी भीतर की उत्तेजना शिथिल पड़ जाती है और वह स्वर्णिम अतीत के स्वप्नलोक में खोजाता है–

'करूँ क्या तज़किरा अपने वतन का
जो गहवारा रहा है फ़िकरो फन का।

जिसे कश्मीर कहते हैं जहाँ में
मैं वासी हूँ उसी उजड़े चमन का।।'

(पृ॰ 22)

यह विस्थापित आज लगभग दो दशकों के बाद भी कई विकट स्थितियों का सामना करता हुआ यातनामय जीवन जीने के प्रयास में रत है। धीरे–धीरे उसका परम्परागत वजूद मिट रहा है। सांस्कृतिक ह्रास की स्थिति से वह गुज़र रहा है। सांस्कृतिक डाइल्यूशन (तणूकरण) धीरे–धीरे उस के अस्तित्व को ही मिटा रहा है। वह अपने सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को बचा नहीं पा रहा है। देश के हर प्रदेश में वह रोज़ीरोटी की तलाश में भटक रहा है।

दुर्भाग्य यह है कि वह वोट–बैंक नहीं है, यदि ऐसा होता तो इस प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में उसे सुरक्षित रूप से जीने का अधिकार प्राप्त होता। यह कितने दुख की बात है कि चार लाख से अधिक कश्मीरी मातृभूमि छोड़कर दर–दर भटक रहे हैं। इन का दोष क्या है? कोई इस पर विचार करने के लिये तैयार नहीं, परिणाम यह है कि चारों ओर अव्यवस्था और अनिश्चितता का वातावरण इन के भविष्य को धूमिल बना रहा है।

एक नि:शस्त्र–निहत्था विस्थापित वहाँ जाकर क्या करेगा जहाँ देश के नेताजन बीसों अंगरक्षकों के साथ भी सड़क पर चलने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। लेकिन भीतर ही भीतर वह अपनी मातृभूमि के लिये तड़प रहा है उसे लग रहा है कि वतन का ज़र्रा–ज़र्रा उसे लौट आने के लिये बुलावा भेज रहा है–

'मैं तड़प जाता हूँ इतना यह रुलाती है मुझे
ऐ वतन जब भी तेरी याद सताती है मुझे
अपनी मिट्टी की वो खुशबू कि जो तड़पाती है
कोई तो चीज़ है वापस जो बुलाती है मुझे।'

(पृ॰ 154)

बुद्धिमानी यही है कि हम यथार्थ को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने का प्रयास करें। आज आतंकी सारे देश में

अपना जाल बिछा चुका है, सम्भव है कि स्वप्नजीवियों की निंद्रा भंग हो जाये। वस्तुस्थिति यह है कि–

'पहचान खत्म हो गई है हर एक शख़्स की
हर एक शख़्स आज है पहने हुये निक़ाब
रिश्ते दिलों के रख से दिये ऐसे तोड़ कर
हम को दिये हैं अपनों ने सदमात बे हिसाब।'

(पृ॰ 12)

प्यारे हताश की ग़ज़लों में अस्तित्व की पीड़ा का एहसास शिद्दत से गहरा रहा है लेकिन वह अकर्मण्य बनकर शिथिल हो जाने में विश्वास नहीं रखता। यही तो उसके ग़ज़लों के शे'रों का आकर्षण है। व्यथा–वेदना अपनी जगह है लेकिन अस्तित्व की रक्षा के लिये संघर्षरत रहना – यही तो श्रीमद्भगवद्गीता का संदेश है। उन्हें विश्वास है कि–

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।'

("आधुनिक कवि" (2) सुमित्रानन्दन. पंत
'आँसू से' पृ॰ 15)

वह भी पत्थरों के वक्ष को चीर कर स्वर्ण कणों की तलाश में दत्तचित्त (एकाग्र) लगा है। उन्हें विश्वास है कि प्रात: की स्वर्ण रश्मियाँ अवश्य विस्थापित के मस्तक का श्रृंगार करेंगी। इतिहास साक्षी है कि सत्य की अवश्य विजय होती है। लेकिन इस विजय तिलक को मस्तक पर धारण करने के हेतु सर्पदंश का ज़हर पचाना होगा–

'मेरे चेहरे को देखें अगर गौर से
मेरा माज़ी बराबर नज़र आयेगा
हम पे ढाये गये हैं हज़ारों सितम
कोई अपनी हमाकत पे पछताएगा।'

(पृ० 48)

(अथवा)

'हम बहरहाल उस को पा लेंगे
अपनी मंज़िल अगरचि दूर सही।'

(पृ० 76)

प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत अधिकांश ग़ज़लें आतंकवादी विनाशलीला, आतंकी ख़ौफ़ एवं विक्षिप्त मन:स्थिति, संहार लीला, षड़यंत्रीय व्यापार, जीवित रहने की उत्कट इच्छा एवं आशाकुल भविष्य की स्वर्णिम सम्भावनाओं के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हैं।

प्यारे हताश ने घाटी का इतिहास अपनी ग़ज़लों में समेटने का प्रयास किया है। आने वाले दिनों में सत्याधृत इतिहास लेखन के हेतु ये इतिहास के प्रामाणिक साक्ष्य कहलायेंगे, इस में कोई सन्देह नहीं। हताश अपनी साधना में व्यस्त है। कितना अच्छा होता यदि वह कई भाषाओं का मोह त्याग कर केवल एक विधा और एक भाषा तक ही सीमित रहकर अपनी कला को इतना माँझ पाता कि स्वर्ण कणों की छटा सर्वत्र निखर उठती।

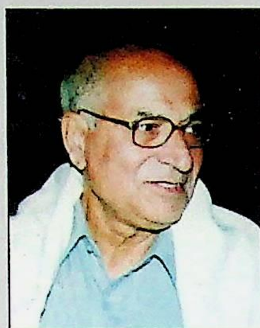
इसी परामर्श के साथ।

(12, दिसम्बर, 2007 ई०)

सांस्कृतिक कक्षाओं का आयोजन कर कश्मीरी रामायण और श्रीमद्भागवत की साप्ताहिक कथाओं का विधिवत् आयोजन किया, जिसमें शिवपुराण कथा भी शामिल है। इन कथाओं के माध्यम से वे जनता जनार्दन में छा गए। डेढ़ वर्ष पूर्व 16 फरवरी 2009 को प्रो० कौल अक्समात हमसे सदैव के लिए बिछुड़ गए पर आज भी उनकी आवाज़ यहीं कहीं गूँज रही है। प्रो० कौल का अंतिम सप्ताह कैसे बीता इस बारे में समाज जानने को उत्सुक था। प्रकाशित पुस्तक में आई.सी.यू बेड० न०– 17 शीर्षक से प्रो० कौल के सुपुत्र श्री ज्योति भूषण कौल द्वारा लिखा गया मार्मिक संस्मरण इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है।

प्रो० कौल अपने पीछे विपुल साहित्य भण्डार को छोड़ गए हैं जिसकी देखरेख करना हमारा परम कर्तव्य है। उनका आवास 'गोपीधाम' इस साहित्य–पुंज से सुशोभित है। हिन्दी तथा कश्मीरी भाषा में अब तक उनकी १३ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके आलोचनात्मक लेखों में समसामयिकता का आग्रह और अपनी विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखने की संकल्पबद्धता भी है। उनकी वर्णनात्मक शैली अपने में अनूठी है। वर्षों से उनके द्वारा लिखी गई डायरियां भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस विपुल साहित्य भण्डार के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए जब चर्चा हुई तो कौल परिवार और विशेषकर प्रो० कौल के सपुत्र श्री ज्योतिभूषण कौल ने इस विचार को आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् **'प्रोफेसर भूषणलाल, मोहनी कौल रिसर्च फाऊंडेशन'** नामक शोध संस्थान का गठन किया गया, सद्य प्रकाशित पुस्तक **'केसरिया कश्यपमर'** इस दिशा में पहला कदम है। इस बृहद आयोजन में सब का सहयोग अपेक्षित है। प्रो० कौल का साहित्य भण्डार समाज के लिए सर्वसुलभ कराना भी फाऊंडेशन का उद्देश्य है। प्रो० कौल के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यहीं होगी कि हम उन के द्वारा प्रारम्भ किए गए अधूरे कार्यों को प्रकाश में लाएं।

प्रो० (डॉ.) महाराजकृष्ण भरत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
राजौरी(जम्मू)



प्रोफ़ेसर भूषण लाल कौल
का रचना संसार

1. 'शारदा-गाँव, तीर्थ और विद्यापीठ'	हिन्दी	2002 ई.
2. 'आनन्द स्वामी श्री प्राणनाथ भट्ट ग़रीब:सन्त एवं कवि	हिन्दी	2002 ई.
3. 'साहित्य और विस्थापन : सन्दर्भ कश्मीर	हिन्दी	2003 ई.
4. 'अरज़थ' (चौदह शोध निबन्ध), पुरस्कृत	कश्मीरी	2003 ई.
5. 'हेरथ-अख ज़ान'	कश्मीरी	2003 ई.
6. 'व्यमर्श' (बारह शोध निबन्ध)	कश्मीरी	2005 ई.
7. 'परमानन्द' (कश्मीरी भक्त कवि)	हिन्दी	2005 ई.
8. 'कश्मीर की सन्त परम्परा' (सम्पादन)	हिन्दी	2005 ई.
9. 'पंखुरियाँ गुलाब की' (पन्द्रह शोध निबन्ध), पुरस्कृत	हिन्दी	2006 ई.
10. 'पण्डित कृष्ण जू राज़दान' (कश्मीरी कृष्ण-भक्त कवि)	हिन्दी	2007 ई.
11. 'प्रज़नथ' (नौ शोध निबन्ध)	कश्मीरी	2007 ई.
12. 'शख़्सियत तु फन' (आलोचनात्मक ग्रंथ)	कश्मीरी	2008 ई.
13. 'अमर शहीद पण्डित प्रेमनाथ भट्ट'	हिन्दी	2009 ई.

प्रकाशक
प्रोफेसर भूषणलाल, मोहनी कौल रिसर्च फाऊंडेशन
'गोपीधाम' - बरनाई (लुहार मुहल्ला)
डाकख़ाना मुंठ्ठी जम्मू-तवी